आंचलिक पत्रकार

ISSN 2319-3107

420

सितंबर, 1981 से प्रकाशित

15 अप्रैल 2017

मूल्य ₹ 25/-

"पानी, जीवन का आधार है, इसलिए बहुत संभव है तत्कालीन समाज ने निरापद एवं स्वस्थ जीवनशैली तथा स्वच्छता को संस्कारों में ढालने के लिए पानी का सहारा लिया। जन्म से लेकर मृत्यु तक, अनेक संस्कारों में शुद्ध जल का प्रयोग होता है। पूजा एवं अनुष्ठानों के माध्यम से निरोग जीवनशैली को स्थायित्व प्रदान करना विज्ञान सम्मत सोच का ही प्रमाण है।"

बिन पानी सब सून

सा विद्या या विमुक्तये

जनसंचार माध्यमों और विज्ञान संचार की शोध पत्रिका

आर.एन.आई.पं.क्र. MP HIN/2004/12178, डाक पंजीयन क्र. म.प्र. भोपाल/162/2015-17

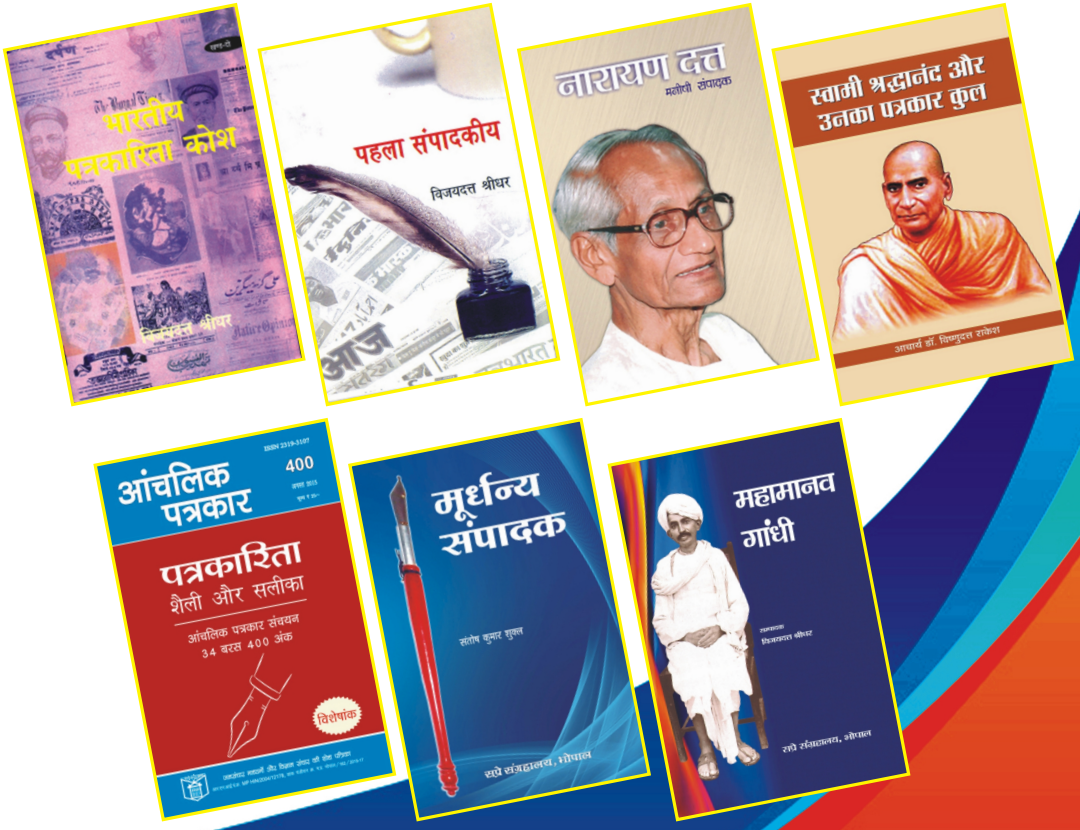

सप्रे संग्रहालय के शोध एवं प्रकाशन

संपादकीय टिप्पणियाँ, पुरोधा संपादकों के पत्रकारिता विषयक व्याख्यानों और आलेखों का समावेश तथा भारत में सभी भाषाओं के समाचारपत्रों और पत्रिकाओं का प्रामाणिक वृत्तांत लिपिबद्ध करने के साथ-साथ भारतीय नवजागरण आंदोलन की सभी गतिविधियों का यथा प्रसंग उल्लेख इन ग्रंथों में हुआ है।

प्रशासनिक अधिकारी
सप्रे संग्रहालय
मेन रोड नं. 3, भोपाल - 462003
दूरभाष - (0755) 2763406, 4272590
Email - sapresangrahalaya@yahoo.com
editor.anchalikpatrakar@gmail.com
Website - www.sapresangrahalaya.com

ISSN 2319–3107

आंचलिक पत्रकार

जनसंचार माध्यमों
और विज्ञान संचार
की शोध पत्रिका

अनुक्रम

4. संपादकीय

7. राजंस्तत्र विचिन्त्यताम् : सवाल–जवाब गंगा और भगीरथ के बीच
रमेशचंद्र शाह

9. अपनी बात

10. बिन पानी सब सून / कृष्णगोपाल व्यास

45. ऋषि पत्रकार पं. अच्युतानंद मिश्र की शख्सियत के बहाने पत्रकारिता पर विमर्श / उमेश चतुर्वेदी

49. पत्रकारिता को स्थापित भारतीय मूल्यों की तरफ लौटना ही होगा

53. बदलते परिवेश में पत्रकारिता

- पता, फोन-मोबाइल नं., ईमेल बदले तो सूचना दीजिए ताकि संवाद का सिलसिला बना रहे।
- जब किन्हीं पाठक का पता बदल जाए, तब कृपया अपना नया डाक का पता, पिन कोड नं. सहित तत्काल सूचित करने का कष्ट करें।
- कृपया टेलीफोन नं., मोबाइल नं. और ईमेल भी भेजिए।
- संवाद का सिलसिला बनाए रखने के लिए यह जरूरी है।

संपादक (मो. 09425011467)

ईमेल : editor.anchalikpatrakar@gmail.com
sapresangrahalaya@yahoo.com

सितंबर, 1981 से प्रकाशित

अप्रैल – 2017

वर्ष–36, अंक–8, पूर्णांक–420

एक प्रति – ₹ 25/– वार्षिक – ₹ 250/–

संपादक मंडल

डा. शिवकुमार अवस्थी
श्री अशोक मानोरिया
डा. मंगला अनुजा
डा. राकेश पाठक

.....

संपादक

विजयदत्त श्रीधर

.....

प्रकाशक

माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र
संग्रहालय एवं शोध संस्थान
माधवराव सप्रे मार्ग (मेन रोड नं. 3)
भोपाल (म.प्र.) 462 003

.....

मुद्रक

दृष्टि आफसेट, प्रेस काम्पलेक्स
महाराणा प्रताप नगर, जोन–I
भोपाल (म.प्र.) – 462 011

.....

संपर्क

फोन – (0755) 2763406
(0755) 4272590
(0755) 2552868

.....

E-mail

editor.anchalikpatrakar@gmail.com
sapresangrahalaya@yahoo.com

संपादकीय

गंगा-यमुना के भाल पर जीवन का तिलक

संदर्भ : उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय का ऐतिहासिक निर्णय

■ विजयदत्त श्रीधर

भारत की संस्कृति और ज्ञान परंपरा में जल, वृक्ष और पर्वत का असाधारण महत्व है। जीवनदाता-आरोग्यप्रदाता होने के कारण इनका सम्मान है। धार्मिक मान्यताओं, लोकाचारों में इनकी महिमा देवी-देवताओं के रूप में गाई गई है। वस्तुतः हमारी ऋषि मनीषा ने मानव और प्रकृति के अन्योन्याश्रित संबंधों को हजारों साल पहले पहचान लिया था। इसी कारण लोक मानस में उनकी दैवी मान्यता की प्रतिष्ठा की गई। अर्चना और वर्जना के संस्कार विकसित किए गए। यही भारतीय समाज में बरते जाने वाले लोक विज्ञान का शाश्वत स्वरूप है। अभाग्यवश समाज में आए लोभ-लालच के ज्वार, राजनीति और प्रशासन की सांठगांठ से आर्थिक अपराधियों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों की निर्लज्ज लूट और विकास के विनाशकारी माडल ने जल-जंगल-पहाड़ की ऐसी दुर्दशा कर डाली है कि मनुष्य और प्रकृति के सम्मुख महाविनाश का संकट पैदा हो गया है।

उन्नीस सौ तीस के दशक में जब यह सवाल उठा कि नल-जल योजना और सीवेज को कहाँ बहाया जाए, तब विलायती ज्ञान-विज्ञान की पढ़ाई पढ़े अँगरेज कमिश्नर हाकिंस ने हुक्म दिया - गंगा में बहा दो। 'काले हिन्दुस्तानी अँगरेज' दैवी आज्ञा जैसी श्रद्धा से उपर्युक्त आदेश का पालन करते आ रहे हैं। हमारी नदियाँ शहरों-बस्तियों की मल-मूत्र-गंदगी और कल-कारखानों का जहरीला अवशिष्ट ढोने के लिए अभिशप्त हैं। धन-पशुओं की तिजोरियाँ भरने के लिए करोड़ों वृक्षों की निर्मम बलि चढ़ाई जा चुकी है। गर्वोन्नत पहाड़ियों को धूल में मिलाया जा चुका है। जब अनदेखी और मनमानी का पानी सिर के ऊपर से गुजर गया, जिम्मेदार तंत्र और नियामकों की नींद से जागने की उम्मीदें समाप्त प्राय होने लगीं, तब हरिद्वार के नागरिक मोहम्मद सलीम ने सन 2014 में जनहित याचिका के माध्यम से उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय का द्वार खटखटाया।

इस बीच एक ऐतिहासिक घटना यह हुई कि 15 मार्च 2017 को न्यूजीलैण्ड की संसद ने कानून बना कर वांगानुई नदी को जीवित इकाई का दर्जा दे दिया। इस कानून से वांगानुई नदी को संप्रभु राष्ट्र के नागरिक को प्राप्त समस्त संवैधानिक अधिकार मिल गए। न्यूजीलैण्ड का माओरी आदिवासी समुदाय वांगानुई नदी को अपना पुरखा मानता है। इसी आस्था को लेकर माओरी समुदाय कोई डेढ़ सदी से वांगानुई की विशेष मान्यता के लिए संघर्ष कर रहा था। आस्था सच्ची थी, इसीलिए फलीभूत हुई। अब यदि कोई वांगानुई नदी को प्रदूषित करेगा या क्षति पहुँचाने वाला कोई कृत्य करेगा या अपशब्द भी

कहेगा, तो इसे माओरी समुदाय के विरुद्ध अपराध माना जाएगा और कानूनी कार्रवाई होगी। इतना ही नहीं, नदी के कानूनी अधिकारों को सुरक्षित रखने का दायित्व दो वकीलों को सौंपा गया है। वांगानुई का पर्यावरण स्वच्छ रखने के लिए तीन करोड़ डालर और कानूनी लड़ाई लड़ने के लिए 10 लाख डालर का कोष बनाया गया है।

इस अभिनव पहल की प्रेरक पृष्ठभूमि में उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय की खण्डपीठ ने 20 मार्च 2017 को असाधारण फैसला सुनाया है। भारत में नदियों की प्राण रक्षा की दिशा में आशा की यह नई किरण है। न्यायमूर्ति राजीव शर्मा और न्यायमूर्ति आलोक सिंह की खण्डपीठ ने 'गंगा' और 'यमुना' को मानव के समान जीवंत इकाई (LIVING ENTITY) घोषित कर दिया। उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय के इस निर्णय के फलस्वरूप ये दोनों नदियाँ स्वतंत्र संप्रभु भारत के नागरिकों के समान सभी संवैधानिक अधिकारों से युक्त हो गई है। इन्हें प्रदूषित करना अथवा किसी भी प्रकार का नुकसान पहुँचाना उसी प्रकार का अपराध होगा जैसा कि हाड़-माँस के जिंदा इंसान के जीवन को संकट में डालने पर बनता है। कानूनी कार्रवाई का सामना करना पड़ेगा। सजा भुगतनी होगी।

गंगा को प्रदूषण मुक्त कराने के लिए दायर ललित मिगलानी की याचिका पर उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय की उसी खण्डपीठ ने गंगा नदी में गंदगी बहा रहे होटल, आश्रम, उद्योगों को सील करने तथा खुले में शौच करने वालों पर जुर्माना लगाने का आदेश दिया है।

उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय ने गंगा और यमुना के अधिकारों की रक्षा और पैरोकारी के लिए नमामि गंगे अभियान के महानिदेशक, उत्तराखण्ड के मुख्य सचिव और महाधिवक्ता के तीन सदस्यीय पैनल को अधिकृत किया है। उम्मीद की जानी चाहिए कि यह पैनल खोज खबर लेता रहेगा कि गंगा-यमुना को क्षति पहुँचाने वाला कोई कृत्य कहाँ हो रहा है? उस पर मुकदमा दर्ज कराएँगे और अदालत से सजा दिलवाने की जिम्मेदारी निभाएँगे। 'सब चलता है' वाला माहौल अब खत्म हो जाना चाहिए। तात्पर्य यह भी कि तीनों आला अफसरों के दायित्व-निर्वाह में कोताही हुई तो उन्हें भी कानून के कठघरे में खड़ा किया जा सकेगा।

वैसे तो भारत की प्रायः सभी नदियाँ समाज और सरकार की अनदेखी की शिकार हैं। सभी मरणासन्न हैं। उनकी जिंदगी के लिए कठोर कदमों की दरकार है। तथापि, गंगा और यमुना का प्रसंग है तो पहले उनकी दशा का लेखा-जोखा कर लें।

गंगोत्री - उत्तराखण्ड से निकलकर 2525 किलोमीटर की यात्रा तय कर बंगाल की खाड़ी में मिलने वाली गंगा भारत की सबसे बड़ी नदी है। गंगा कछार का जलागम क्षेत्र 8,61,404 वर्ग किलोमीटर है। देश के 26.4 प्रतिशत भू-भाग में इसका फैलाव है। भारत की 43 फीसद आबादी आजीविका के लिए गंगा पर निर्भर है। यमनोत्री-उत्तराखण्ड से निकलकर 1376 किलोमीटर की दूरी तय करने वाली यमुना तीर्थराज प्रयाग में गंगा से संगम करती है। गंगा-यमुना का दोआब भारत का सबसे महत्वपूर्ण भू-भाग है। इतिहास, संस्कृति, धर्म, अध्यात्म, उद्यम की चैतन्य भूमि।

गंगा-यमुना भारत की पवित्र सप्त सरिताओं में प्रतिष्ठित हैं। देवी-माँ के रूप में इनकी लोक मान्यता है। पूजी जाती हैं ये नदियाँ। इनके तटों पर तीर्थ स्थापित हैं। परन्तु

बाजारू वृत्तियों के चलते इनके भक्त ही इनके विनाश का ताण्डव रच रहे हैं। इनके किनारों की बसाहटें; कल-कारखाने, बेइंतहा जहरीला कचरा गंगा-यमुना में उड़ेल रहे हैं। जिस समाज को इनकी फिक्र करनी चाहिए, वह पाखण्ड तो करता है, परन्तु जिन्दा समाज की तरह बरताव नहीं करता। शासन-प्रशासन भी सचमुच फिक्रमन्द नहीं हैं। इसीलिए तीन दशक के कथित अभियानों के बाद भी गंगा-यमुना तिल-तिलकर मौत की ओर बढ़ रही हैं। नेता भाषणों के रसायन से नदियों का पुनरुद्धार करने की ठाने हुए हैं और भारतीय संस्कृति से अनजान अफसरशाही परियोजना-पर्यटन का आनन्द उठा रही है। जनता के खजाने का अरबों रुपया बरबाद हो चुका है और होता जा रहा है।

यह करुण-कथा, कलंक-प्रपंच, अकेले गंगा-यमुना की कहानी नहीं है। भारत की तमाम नदियाँ-सरोवर मौत के मुहाने पर हैं। इन्हें जानने-मानने-पूजने वाले समाज को जागना होगा इन्हें बचाने के लिए। जूझना होगा अपनी अकर्मण्यता, उदासीनता और पाखण्डप्रियता से। उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय ने रास्ता खोल दिया है। यह सभी जल स्रोतों के लिए नजीर बन सकता है। समूचे देश से इस फैसले के स्वागत और समर्थन में आवाज बुलन्द हो। हर हाथ उठे और नदियों को बचाने के काम में जुट जाए। सरकारों को विवश कर दे सही कदम उठाने के लिए और धन-पशुओं को मजबूर कर दे विनाश के डेरे उठाने के लिए। याद रखिए, नदियाँ बचीं तभी जिन्दगियाँ बचेंगी। ❑❑

डा. कर्नावट विश्व हिंदी सचिवालय मारीशस द्वारा पुरस्कृत

विदेश में हिन्दी मीडिया के शोधार्थी एवं बैंक आफ बड़ौदा, कारपोरेट कार्यालय, मुंबई के उप महाप्रबंधक, डा. जवाहर कर्नावट को भारत एवं मारीशस सरकार द्वारा संयुक्त रूप से स्थापित विश्व हिंदी सचिवालय, मारीशस द्वारा वैश्विक स्तर पर आडियो वीडियो के माध्यम से आयोजित हिंदी वाचन प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ है। इस प्रतियोगिता में डा. कर्नावट ने भारतीय संवर्ग में 'हिंदी कल, आज और कल' विषय पर अपनी प्रविष्टि सचिवालय को प्रेषित की थी। इन पुरस्कारों की घोषणा सचिवालय द्वारा मारीशस की राजधानी पोर्ट लुइस में आयोजित विश्व हिंदी दिवस समारोह में की गई। उल्लेखनीय है कि डा. कर्नावट विश्व के अनेक देशों की यात्रा कर अंतरराष्ट्रीय मंचों पर प्रस्तुति दे चुके हैं। ❑

प्रखर पत्रकार रवीश कुमार को कुलदीप नैयर सम्मान

भाषायी पत्रकारिता में योगदान देने वाले पत्रकारों को दिया जाने वाला 'कुलदीप नैयर सम्मान' एन.डी.टी.वी. के प्रखर पत्रकार श्री रवीश कुमार को प्रदान किया गया। प्रख्यात पत्रकार श्री कुलदीप नैयर और समाजशास्त्री श्री आशीष नंदी ने इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में उन्हें एक लाख रुपये की सम्मान राशि और प्रतीक चिह्न प्रदान कर सम्मानित किया। ❑

राजंस्तत्र विचिन्त्यताम् : सवाल–जवाब गंगा और भगीरथ के बीच

संदर्भ : नमामि देवि नर्मदे सेवा-यात्रा

■ रमेशचंद्र शाह

इस पुण्यभूमि में समवेत मेरे समान शील, समान धर्मा बन्धु बान्धवियो!

हम सब यहाँ इस पुण्यभूमि में पुण्यतोया नर्मदा मैया के सान्निध्य में जिस स्वधर्म-पालन हेतु, जिस देशव्यापी-विश्वव्यापी पर्यावरण-चिन्ता और चेतना से प्रेरित होकर एकत्र हुए हैं, वह एक अभूतपूर्व अनुष्ठान ही नहीं, अभूतपूर्व कर्म-प्रेरणा में पर्यवसित हो --- इसी निष्ठा और मनोकामना के साथ मैं आप सभी का अभिनन्दन और कृतज्ञ आह्वान करता हूँ। 'तुमुल कोलाहल कलह में/मैं हृदय की बात रे मन'...। मैं भी अपने हृदय की बात सुनने और आप सबको सुनाने के लिए 'अमृतस्यनर्मदा' और 'तीरे-तीरे नर्मदा' जैसी अमर कृतियों के प्रणेता और अधुनातन नर्मदा-पुराण के 'हीरो' अमृतलाल वेगड़ के ही एक मर्मोद्गार को उद्धृत करते हुए आपके समक्ष अपने मन्तव्य की शुरुआत किया चाहता हूँ। वह उद्गार यूँ है : सुनें कृपया -- क्या कह रहे हैं -- गंगापुत्र भीष्म जैसे दृढ़प्रतिज्ञ नर्मदा-पुत्र अमृतलाल वेगड़ ...? वे कहते हैं --

...'' अगर सौ या दो सौ साल बाद किसी को एक दम्पति नर्मदा की परिक्रमा करते दिखाई दें, पति के हाथ में झाड़ू हो और पत्नी के हाथ में टोकरी और खुरपी। घाटों की सफाई के साथ दोनों वृक्षारोपण भी करते जाते हों, तो समझ लीजिए वे ही हैं -- अमृतलाल वेगड़ और कान्ता वेगड़।''

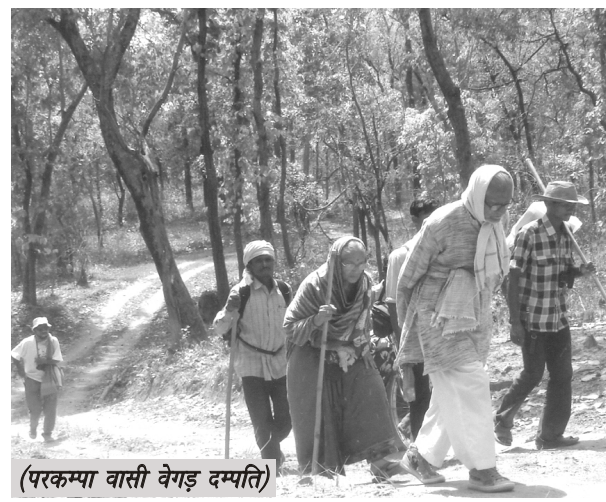

(परकम्पा वासी वेगड़ दम्पति)

मित्रों! मुझे पता नहीं, यह भविष्यवाणी कहाँ तक फलेगी? परन्तु आपका यह विराट उपक्रम मन में ऐसी ही आशा और आस्था का संचार कर रहा है। एक मैं ही क्यों, हजारों-लाखों भारतवासी वेगड़ जी की प्रख्यात पुस्तकों के माध्यम से नर्मदा-परिक्रमा के रोमांचकारी अनुभवों से गुजरे होंगे। उनसे बड़े नर्मदा मैया के भक्त और साक्षात्कारी आराधक की कल्पना मेरे लिए कठिन है। मित्रों! नदी-पहाड़-वन सिर्फ भौगोलिक उपादान भर नहीं हैं; वे मनुष्य के समूचे पुराण-संस्कारों को अपने में प्रतिबिम्बित करते हैं। दुनिया में किस नदी की ऐसी महिमा है, जिसकी परिक्रमा करते हुए यात्री स्वयं अपने भीतर एक अटल पवित्रता-पावनता का बोध पाते हैं। 'हिन्द स्वराज' में महात्मा गांधी का कहना है कि ''पाश्चात्य सभ्यता ने सिर्फ भारत के शहरी कगारों को ही प्रदूषित किया है, उसके देहाती मर्मस्थलों

को नहीं, जहाँ उसकी आत्मा निवास करती है।'' हमें बारम्बार इस आत्मा के दर्शन उन असंख्य परकम्पावासियों में होते रहे हैं जो सारे कष्ट उठाकर यहाँ नर्मदा के तटों पर आते रहे हैं; विश्व में अन्यत्र कहाँ प्रकट हुआ है नदी की धारा के साथ बहता हुआ ऐसा लम्बा जुलूस -- नाना भाषाओं और भंगिमाओं वाला? मैं कामना करता हूँ कि भारतीय लोक-संस्कृति के ऐसे संदेशवाहक आगे भी होते रहें और आपका यह आयोजन ऐसी प्रेरणा और संभावना को साकार करने का निमित्त बने।

मित्रों! नर्मदा गंगा की ही तरह हम भारतवासियों के मन-प्राण में प्रतिष्ठित रही है। यह मात्र एक संयोग भर नहीं हो सकता कि इस आयोजन के निमित्त से आपको संबोधित करते हुए मुझे अनायास ही श्रीमद्भागवत की एक कथा याद आ रही है जो मैंने बचपन में कभी सुनी थी कथावाचक के मुख से। यह कथा-प्रसंग भगीरथ की तपस्या सफल होने के ठीक पहले का है। गंगाजी भगीरथ की तपस्या से अभिभूत हैं, प्रसन्न हैं। किन्तु, कहती हैं -- ''बेटा भगीरथ! मैं तुझे निराश नहीं करना चाहती; किन्तु मेरे मन में एक बड़ी आशंका है, जिसके कारण मैं पृथ्वी पर तेरी मनोकामना पूरी करने के लिए उतरने से हिचक रही हूँ। मुझे भय है कि जैसे ही मैं धरती पर उतरूँगी, वैसे ही लाखों पृथ्वीवासी मनुष्य मुझमें अपने सारे पाप-कलुष बहाने को उमड़ पड़ेंगे। तो, भगीरथ, जरा यह तो सोचो, यह तो बताओ कि ऐसी हालत में मेरा क्या होगा? लाखों लोगों के उन अगणित पापों को मैं कहाँ धोऊँगी? कैसे उनसे पिण्ड छुड़ाऊँगी?''

''किं चाहं न भुवं यास्ये, नराः मय्यामृजन्त्यघः।
मृजामि तदघं कुत्र, राजंस्तत्र विचिन्त्यताम्।।''

अब गंगा मैया की इस अत्यंत सच्ची-मार्मिक शंका को भगीरथ ने किस तरह झेला? कैसे उसका निराकरण करके उन्हें मनाया? कैसे गंगावतरण की राह में आई इस दुर्बाध्य-अपाट खाई को लाँघा -- यह भी सुन लीजिए।

भगीरथ बोले - ''माँ, तुम्हारी शंका अपनी जगह बिलकुल ठीक है। मगर मेरा विनम्र उत्तर आपकी इस शंका का, जो मेरा हृदय दे रहा है, वह यह है कि जहाँ लाखों पापी तुम्हारे प्रवाह में अपने पाप धोएँगे, वहीं एकाध पुण्यात्मा भी तो कभी न कभी स्नान करने आएगा। लो, माँ, वह एक पुण्यात्मा ही समस्त पापियों पर भारी पड़ेगा। वही निर्मल कर देगा तुम्हें माँ! तुम निश्चिंत रहो।''

अब यहाँ भागवतकार का कहना है कि ''परम करुणा-कृपामयी गंगा मैया भगीरथ के इस उत्तर से आश्वस्त हो गई और पृथ्वी पर उतरने को प्रस्तुत हो गई।''

अब बन्धुओं! आज इस इक्कीसवीं सदी के नर्मदा मैया के शरणागत सुहृदजनों! क्या आपकी आज की शंकाओं का भी निवारण हो जाता है अपने पूर्वज भगीरथ के इस उत्तर से? स्वयं नर्मदाजी इस उत्तर से आज की तारीख में आश्वस्त हो सकती हैं? सच-सच बताइए। इस अभूतपूर्व पर्यावरण-संकट और प्रदूषण के युग में क्या आप सब जो यहाँ एकत्र हैं, भगीरथ की इस श्रद्धा को वहन करने की जिम्मेदारी ले सकते हैं? उनकी श्रद्धा और विश्वास के योग्य ठहरते हैं? उस युग की बात दूसरी थी। हमें वादा करना पड़ेगा नर्मदाजी से कि हम सब पुण्यात्मा बनेंगे -- सब मिलकर स्वच्छ बनाएँगे, सदा निर्मल बनाएँ नर्मदाजी को। वेगड़ दम्पति की ही तरह।

तो मित्रों! अब यह आपकी-हमारी सबकी जिम्मेदारी है कि हम इस आयोजन के कर्ताधर्ताओं की -- माननीय मुख्यमंत्रीजी की भी निष्ठापूर्ण पहल को सचमुच कृतकार्य करें -- सफल बनाएँ। कहीं ऐसा न हो कि अपने रोजमर्रा के आडम्बरी-आनुष्ठानिक स्वभाव के चलते हम लोग सिर्फ यह अनुष्ठान निभा के ही कृतकृत्य न मान लें स्वयं को। जाग्रत संकल्प के साथ उज्ज्वल कर्म को यहाँ के स्तर पर यह संभव करके दिखाएँ।

(व्याख्यान का पाठ)

अपनी बात

समाज, प्रकृति और विज्ञान

जागो, उठो और अपनी धरती को बचाने में जुट जाओ जिससे यह आने वाली पीढ़ियों के रहने लायक बनी रहे

हमारा मानना है कि पूरे समाज को वैज्ञानिक नहीं बनाया जा सकता। परन्तु इतनी समझ जरूर बनाई जा सकती है कि व्यक्ति अपने लाभ-हानि की ठीक से पहचान कर सके। भारत का किसान कृषि विज्ञान विषयक समझ में बेजोड़ है। सदियों से उसका प्रयोग करता आ रहा है। लोक संस्कारों में भी विज्ञान के तत्व मौजूद हैं। परन्तु हमारा आचरण प्रायः प्रकृति-विरोधी है। हम या तो हरियाली के विनाश में शामिल हैं अथवा मूकदर्शक बने हुए हैं। हमने कुओं, बावड़ियों, तालाबों, झरनों, नालों, नदियों को बरबाद करने में भागीदारी की है। अथवा इनकी बरबादी को हाथ पर हाथ धरे देखते रहते हैं। हम नदियों की रेत पर डाका पड़ते देखते हैं। पहाड़ियों को धूल में मिलते देखते हैं। हमारी सोच की दरिद्रता यह है कि हम सब कामों के लिए सरकार का मुँह ताकते हैं। सबकी जवाबदारी सरकार की ही मानते हैं। यह भूल जाते हैं कि लोकतंत्र में लोक ही असली नियामक होता है। यह प्रकृति भी समाज की साझा सम्पदा है। बल्कि थाती है, अमानत है, उन पीढ़ियों की जिन्हें अभी पैदा होना है। समाज का ही इस पर अधिकार है और इसलिए समाज की ही जवाबदारी है इन्हें बचाने की।

एक विडम्बना हरित क्रांति ने भी पैदा की है। हमारी शस्य श्यामला भूमि नसैड़ी हो गई है। रासायनिक खाद, कीटाणुनाशक और खरपतवार नाशक रसायनों की भरमार ने हालात गंभीर बना दिए हैं। धरती बाँझ हो रही है। वह कैंसर जैसी जानलेवा बीमारियाँ पैदा कर रही है।

महात्मा गांधी ने कहा है कि ''पृथ्वी सबकी जरूरतें पूरी कर सकती है, परन्तु किसी के लालच की नहीं।'' यह तथ्यपूर्ण कथन हमारे लिए मार्गदर्शी है। ऐसे तमाम मुद्दों पर सप्रे संग्रहालय की टीम पिछले दस बरसों से समाज से संवाद कर रही है।

हमारे अनुभवों का निचोड़ 'समाज का प्रकृति एजेण्डा' के रूप में सामने आया है। इसकी भाषा और शैली ऐसी है जो कम पढ़े-लिखे लोगों की समझ में भी आए। एजेण्डा खुद लोगों से बोले - बतियाए, तब बात बनेगी।

- संपादक

समाज, प्रकृति और विज्ञान

बिन पानी सब सून

■ कृष्णगोपाल व्यास

आज बहुत ही अच्छा दिन है क्योंकि आज इतने सारे लोग पानी और वनों पर चर्चा करने के लिए इकट्ठे हुए हैं। सभी का मानना है कि यह चर्चा समय काटने के लिए नहीं है। यह चर्चा अच्छे लोगों को जोड़कर कुछ अच्छा करने के लिए है। इस चर्चा के माध्यम से आज हम जल स्वावलम्बन से जुड़ी कुछ उजली कहानियों की बानगी देखेंगे। ये कहानियाँ उन लोगों की हैं जो आमजन थे। उन्होंने अपने कामों तथा समाज के सहयोग से हाशिए पर बैठे लोगों तथा समाज की उम्मीदें जगाई थीं। उम्मीदों को पूरा किया था। लोगों की कसौटी पर खरे उतरे थे। उनकी कहानियाँ आश्वस्त करती हैं कि सोच बदलकर जल कष्ट को जल आपूर्ति की कारगर संभावना में बदला जा सकता है। इसलिए आज हम कुछ उजली संभावनाओं के क्षितिज भी तलाशेंगे। यह चर्चा मुख्य रूप से समाज को उसकी ताकत तथा बुद्धिबल की याद दिलाने के लिए भी आयोजित की गई है। समाज के बुद्धिबल और क्षमता को याद कराने के लिए सबसे पहले हम, रामायण के उस प्रसंग को याद करें जिसमें सीता का पता लगाने गई सुग्रीव की वानर सेना समुद्र तट पर असहाय होकर बैठी है। उसका लक्ष्य समुद्र पार लंका पहुँचना है। लक्ष्य की 400 योजन की दूरी के सामने बलवान वानर भी लाचारी जता रहे हैं। उनको लगता है, वो बहुत कम दूरी तक ही छलाँग लगा सकते हैं। समुद्र पार करना उनके बस की बात नहीं है। तब जामवंत, हनुमान को उनके बुद्धिबल और ताकत की याद दिलाने के लिए कहते हैं -

"कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना।
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि विवेक बिग्यान निधाना।।"

हनुमान को अपना बिसराया बल याद आ जाता है। वे एक ही छलाँग में समुद्र लाँघ जाते हैं। लंका पहुँचकर सीता का पता लगा लेते हैं। उनसे मिल भी लेते हैं। राम को सीता का पता भी बता देते हैं। इसी प्रकार, महाभारत के युद्ध में अर्जुन ऊहापोह में हैं। अपने सगे संबंधियों और गुरु से युद्ध करें कि नहीं करें के असमंजस ने उन्हें किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया था। ऐसी परिस्थितियों में श्रीकृष्ण ने उन्हें कर्म की शिक्षा दी और कर्तव्य की याद दिलाई। अर्जुन उठ खड़े हुए। युद्ध में विजयी हुए। वही हालत आज हमारे समाज की है। पानी और जंगल के मामले में शायद हम भी जामवंत, हनुमान तथा कृष्ण जैसे प्रेरकों को खोजना चाहते हैं। आइए मिलकर आधुनिक युग के जामवंतों, हनुमानों तथा कृष्ण को अपने आसपास खोजें। आवश्यकता पड़े तो उनका मार्गदर्शन प्राप्त करें। अनुभव, ज्ञान और सीख

साझा करें। अपनी क्षमता तथा बुद्धिबल का उपयोग करें।

हमारे प्रेरक - उनका योगदान और संदेश

इस उपशीर्ष के अन्तर्गत हम अपने प्रेरकों के बारे में जानेंगे तथा उन उजली संभावनाओं के क्षितिज तलाशेंगे। उन कहानियों की बानगी देखेंगे जो हाशिए पर बैठे लोगों तथा समाज की उम्मीद जगाती है और आश्वस्त करती हैं कि सोच बदलकर जल कष्ट को जल आपूर्ति की कारगर संभावना में बदला जा सकता है। अगले कुछ पन्नों में देश के अलग अलग भागों में समाज सेवा को अपने जीवन का उद्देश्य मानने वाले सामान्य लोगों की उपलब्धियों की कहानी कही गई है, जिन्होंने समाज के देशज ज्ञान और मार्गदर्शन से वे परिणाम हासिल किए हैं जो गर्व और ईर्ष्या की मिलीजुली मिसाल हैं। पानी के प्रेरकों की सूची में कुछ प्रसिद्ध नाम हैं। वे हैं अनिल अग्रवाल, अनुपम मिश्र, अन्ना हजारे, राजेन्द्र सिंह, पी.एस. मिश्रा, पोपटराव पवार, बलबीर सिंह सिंचेवाला, चनवासप्पा शिवप्पा कोम्बाली तथा अनेक गुमनाम लोग। इन सामान्य लोगों ने समाज के साथ मिलकर पानी की नई इबारत लिखी है। जंगल के मामले में आधुनिक जामवंत और हनुमान हैं - चण्डीप्रसाद भट्ट, सुन्दरलाल बहुगुणा और अनेक अनाम व्यक्ति। उन्होंने जंगल बचाने और जैवविविधता (बायोडायवर्सिटी) को बहाल करने के लिए अद्भुत काम किए हैं। यह चर्चा आपको उनके प्रयासों से परिचित कराने और अपनी हौसला अफजई में मददगार सिद्ध होगी।

गांधीजी का ग्राम स्वराज

सेन्टर फार साइंस एण्ड इन्वायरोन्मेंट, नई दिल्ली के अनिल अग्रवाल द्वारा प्रकाशित किताब 'हरे भरे ग्रामों की ओर' में राजस्थान के उदयपुर के एक छोटे से ग्राम सीड का उल्लेख है। यह गाँव सन 1971 में राजस्थान के ग्रामदान कानून के अन्तर्गत पंजीकृत हुआ था। यह कानून देश का सबसे पहला कानून है जो गाँव की ग्राम सभा को कानूनी और काम करने का अधिकार देता है। यह कानून विनोवा भावे के भूदान आन्दोलन से प्रेरित होकर बना था। इसके अन्तर्गत ग्राम को अधिकार है कि वह खुद को ग्रामदान गाँव घोषित कर दे। मान्यता प्राप्त होते ही गाँव की ग्रामसभा को अपने इलाके के भीतर के प्राकृतिक संसाधनों का प्रबन्ध करने, न्याय करने, दंड देने और मुकदमा चलाने का अधिकार मिल जाता है। सीड ग्रामदान गाँव है। इस कारण उसकी ग्राम सभा का, गाँव की सीमा में आने वाली पूरी जमीन पर नियंत्रण है। इसमें सरकारी जमीन और सरकारी धन से बनी सभी सार्वजनिक संरचनाएँ भी सम्मिलित हैं। गाँव के सभी वयस्क इसके सदस्य हैं। सीड की ग्रामसभा ने सार्वजनिक भूमि के संरक्षण के लिए स्पष्ट नियम बना रखे हैं। पोषक तत्वों को खो चुकी सत्वहीन अरावली में यह भूमि, हरियाली का जीता जागता नखलिस्तान है। अभूतपूर्व सूखे में भी इसके पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव देखने में नहीं आता।

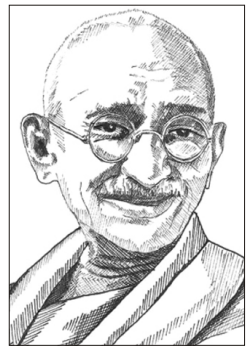

सीड ग्राम का अनुभव आँखें खोलने वाला है। वह अनुभव स्पष्ट करता है कि गांधीजी की ग्राम गणराज्य की पर्यावरण आधारित अवधारणा, विलक्षण और अनुकरणीय है। वह अवधारणा किसी भी गाँव की अर्थव्यवस्था को नया जीवन दे सकती है। सीड गाँव का सन्देश है कि सार्वजनिक संसाधनों का विकास और सुधार करने के लिए ग्राम में सक्रिय सामुदायिक मंच आवश्यक है। सामुदायिक मंच पर अच्छे लोग आवश्यक हैं। सामुदायिक मंच का अपने ग्राम के पर्यावरण, उसके प्रबन्ध और संसाधनों की हिस्सेदारी तय

करने पर पूरा नियंत्रण होगा तभी सार्वजनिक संसाधनों का विकास और सुधार संभव है। गांधीजी की ग्राम गणतंत्र की अवधारणा विकल्पहीन है। उसका विकल्प नहीं है। सीड गाँव में प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्ध की बागडोर सरकार के बजाय समाज के हाथ में है। इस गाँव की कहानी बताती है कि समस्या का हल वही समाज बेहतर तरीके से कर सकता है जिसके हित, फायदे, नुकसान, समस्या के हल से जुड़े हैं और उसे काम करने की पूरी पूरी आजादी है।

अनुपम मिश्र - तालाबों के पुरोधा

गांधी शान्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली के अनुपम मिश्र विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। तालाबों और पानी पर उनकी दो किताबें हैं - 'आज भी खरे हैं तालाब' और 'राजस्थान की रजत बूँदें'। उनकी जल साधना यात्रा होशंगाबाद जिले में मिट्टी बचाओ आन्दोलन से प्रारंभ हुई थी। वे तत्कालीन उत्तरप्रदेश के चिपको आन्दोलन से भी जुड़े थे। अनुपम मिश्र ने परम्परागत तालाबों के बारे में अपनी किताब 'आज भी खरे हैं तालाब' में लिखा था कि

''सैकड़ों, हजारों तालाब अचानक शून्य से प्रकट नहीं हुए थे। इनके पीछे इकाई थी बनवाने वालों की तो दहाई थी बनाने वालों की। यह इकाई, दहाई मिलकर सैकड़ा, हजार बनती थी।''

''जहाँ सदियों से तालाब बनते रहे हैं, हजारों की संख्या में बने हैं - वहाँ तालाब बनाने का पूरा विवरण न होना शुरू में अटपटा लग सकता है, पर यह सहज स्थिति है। तालाब कैसे बनाएँ के बदले चारों तरफ तालाब ऐसे बनाएँ का चलन था।''

अनुपम मिश्र की नजर में परम्परागत ज्ञान को समाज की धरोहर बनाने का यह भारतीय तरीका था। यह तरीका लोगों को शिक्षित करता था। उनके कौशल का समग्र विकास करता था। उनका आत्मविश्वास जगाता था। उन्हें काबिल बनाता था। यही ज्ञान तथा काबलियत, समाज को पूरी जिम्मेदारी से भागीदारी का अवसर देती थी।

अनुपम की किताबों से प्रेरणा लेकर हजारों लोगों ने बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र और गुजरात में अनेक नये तालाब बनवाए। पुराने बदहाल तालाबों को ठीक किया। उन्होंने जीवनभर मानवता और प्रकृति के बीच गहरे रिश्ते को बनाने, भारत के परम्परागत जल प्रबन्ध और स्थानीय हुनरमंद लोगों को सामने लाने का काम किया। उनका मानना था कि पानी का काम सरकारी तंत्र तथा सरकारी धन से नहीं अपितु समाज की सक्रिय भागीदारी से ही हो सकता है। वे नदियों की भी बहुत चिन्ता करते थे। वे नदियों की आजादी के पक्षधर थे। उनका मानना था कि गंदी नदियों को पुनः नदी बनाने के लिए उनका पर्यावरणी प्रवाह लौटाना होगा। वही एकमात्र रास्ता है।

अन्ना हजारे का करिश्मा

अन्ना हजारे का जन्म सन 1938 में महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले के भिंगर ग्राम में हुआ था। सामान्य शिक्षा के बाद सन 1962 में वे फौज में भर्ती हुए और उन्होंने सन 1975 तक फौज में नौकरी की। सन 1975 में स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के बाद, वे सूखा प्रभावित गाँव (रालेगाँव सिद्धि) आ गए। महात्मा गांधी और स्वामी विवेकानन्द से प्रभावित, अन्ना हजारे (मूल नाम किसन बाबूराव हजारे) ने रालेगाँव सिद्धि में आकर समाज को संगठित किया और

पानी की कमी, सूखा, गरीबी, कुरीतियों और पलायन के विरुद्ध काम करने को अपने जीवन का मिशन बनाया। उनके काम के कारण, रालेगाँव का चट्टानी इलाका, जहाँ लगभग 400 मिलीमीटर पानी बरसता है, जलग्रहण विकास के आत्मनिर्भर टिकाऊ माडल के रूप में सारे देश में स्थापित हुआ। हजारों लोगों ने उससे प्रेरणा ली। इस काम ने उन्हें देश विदेश में सम्मान दिलाया। उनका काम लाखों लोगों के लिए प्रेरणास्रोत है। इतने साल बीतने के बाद भी रालेगाँव में उनके काम की चमक फीकी नहीं पड़ी है। आज भी रालेगाँव के लोग पानी और मिट्टी के कामों की व्यवस्था सँभाल रहे हैं। आज भी रालेगाँव का ग्रामीण समाज पानी के मामले में समृद्ध है। उनके गाँव में खेती, फायदे का सौदा है। रालेगाँव की कहानी, जल स्वराज हासिल करने वाले समाज की अद्भुत कहानी है। अन्ना हजारे को भारत सरकार का पद्म विभूषण तथा विश्व बैंक का जीत गिल मेमोरियल अवार्ड (2008) असाधारण जन सेवा के लिए मिल चुका है।

राजेन्द्र सिंह - आधुनिक भगीरथ

जल पुरुष के नाम से प्रसिद्ध राजेन्द्र सिंह का जन्म 6 अगस्त 1959 को मेरठ जिले के डोला ग्राम में हुआ था। वे पेशे से आयुर्वेदाचार्य हैं। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी में स्नातकोत्तर उपाधि भी प्राप्त की है। उन्होंने सन 1984 में तरुण भारत संघ (स्वयंसेवी संस्था) की स्थापना की। राजस्थान के सूखा पीड़ित अलवर जिले के भीकमपुरा ग्राम को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। पानी की परम्परागत जल प्रणालियों को समाज के साथ बैठ कर जाना, समझा और हजारों की संख्या में जोहड़, एनीकट और छोटे छोटे बाँध बनवाए। अरवारी सहित सात नदियों को जिन्दा किया, समाज नियंत्रित जलप्रबन्ध और अरवरी जल संसद के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पानी के उपयोग की स्वावलम्बी प्रजातांत्रिक प्रणाली विकसित की। जल संरक्षण के क्षेत्र में अनुकरणीय काम करने के कारण उन्हें वर्ष 2001 में रेमन मैग्सेसे पुरस्कार मिला है। सन 1984 में 25 साल की आयु में वे, स्थानीय बुजुर्गों की सलाह पर समाज को संगठित करने तथा जोहड़ों को बनाने एवं जल संरचनाओं को गहरा करने के काम में जुट गए। समाज के सहयोग से उन्होंने अल्पवर्षा वाले इलाके में पानी के संकट से मुक्ति का रास्ता दिखाया। ग्रामीणों को संगठित कर परम्परागत जलप्रबन्ध की मदद से सामुदायिक सम्पत्तियों के संरक्षण एवं प्रबन्धन की नई दृष्टि विकसित की।

राजस्थान की सात सूखी नदियों के जीवन्त होने की कहानी

समाज के सामूहिक प्रयासों से अलवर और करौली जिलों में रूपारेल, अरवरी, जहाजवाली, सरसा, भगाणी - तिलदेह, महेश्वरा और साबी (कुल सात) नदी जिन्दा हो चुकी हैं। नदियों को जिन्दा करने के प्रयास में सबसे अधिक ध्यान प्रवाह बढ़ाने पर दिया है। पुनर्जीवित प्रवाह को फिर सूखने से बचाए रखने के लिए भूजल और नदी से सीधे पानी उठाने में संयम बरता गया है। जल उपयोग के कायदे-कानूनों को समाज ने खुद तय किया है। मैंने इन सभी नदियों को अविरल बहते देखा है। उन सभी का कछार हरा-भरा है। आसपास के वन सम्पन्न हैं। जैव विविधता सम्पन्न है। उस पर कोई संकट नहीं है।

महेश्वरा नदी का पुनर्जन्म 17 सालों के प्रयास से सन 2008 में हुआ है। महेश्वरा नदी के पुनर्जन्म की खुशी में दिनाँक 6 एवं 7 सितम्बर 2008 को करोली जिले के खिजुरा गाँव में जल कुंभ मनाया गया। इस कार्यक्रम में 80 ग्राम सभाओं ने भाग

लिया था। यह गाँव केलादेवी से 18 किलोमीटर दूर, सपोटरा की डाँग में बसा गूजर बहुल इलाका है। यहाँ से लगभग 8 किलोमीटर दूर से चम्बल बहती है। गर्मी में इस इलाके का तापमान 46 डिग्री सेन्टीग्रेड तक और सरदी में तापमान का 2 डिग्री तक पहुँचना आम बात है। बरसात का मौसम 15 जून से सितम्बर की शुरुआत तक और कुल बरसात 550 से 650 मिलीमीटर होती है। बरसात अनियमित है। मावठा नहीं गिरता। इस इलाके में ऊँट, बकरी, गाय, भैंस, हिरन, बारहसिंघा, सुअर, लकड़बग्घा और नीलगाय बहुतायत से पाए जाते हैं।

गाँव के लोग बताते हैं कि महेश्वरा नदी बरसों से सूखी थी। लगभग 17 सालों के प्रयास के बाद अब नदी बारहमासी हो गई है। इन 17 सालों में 80 गाँवों के लोगों ने इस छोटी सी नदी के आसपास 387 जल संरचनाएँ बनाई हैं। ये संरचनाएँ मुख्यतः पोखर, जोहड़, अनीकट हैं जो कड़े पत्थर (सेन्ड स्टोन) एवं कहीं कहीं शेल (सेन्ड स्टोन की अपेक्षा कम कड़ा पत्थर) की परत पर बने हैं। उल्लेखनीय है कि इलाके में मिट्टी की परत का लगभग अभाव है। यह इलाका रणथम्भोर अभयारण्य का हिस्सा है। वृक्षों एवं हरियाली के नाम पर देशी बबूल और कहीं कहीं यदाकदा घास देखी जाती थी।

समाज के प्रयासों से हरियाली लौट आई है। महेश्वरा नदी सदानीरा हो गई है। स्थानीय परिस्थितियों को संज्ञान में रख समझदारी से काम में लिया परम्परागत विज्ञान काम आ गया है। तालमेल बैठ गया। खेती सुधर गई। खरीफ में बासमती चावल और बाजरा तथा रबी में गेहूँ की फसल ली जाने लगी। महेश्वरा नदी के जिन्दा होने से -

- नदी में जलचरों तथा पानी में पैदा होने वाली वनस्पतियों के सुखी जीवन के लिए आधारभूत न्यूनतम जल प्रवाह सुनिश्चित हुआ है।
- गरीब लोगों की रोजी रोटी सुनिश्चित हुई है।
- नदी किनारे पर रहने वाले लोगों की सिंचाई जरूरतें पूरी हुई हैं।
- नदी का पानी प्रदूषण मुक्त है। उसकी गुणवत्ता जीवनदायनी है।
- जल प्रवाह में सिल्ट की मात्रा न्यूनतम स्तर तक आ गई है।
- पलायन घट गया है।

समाज का अभिनव प्रजातांत्रिक प्रयोग - अरवरी जल संसद

समाज के प्रयासों से राजस्थान की जिन्दा हुई नदियों को भविष्य में सूखने से बचाने के लिए समाज सम्मत प्रजातांत्रिक रणनीति आवश्यक थी। उस प्रजातांत्रिक रणनीति को तय करने के लिए अलवर जिले के एक छोटे से गाँव 'देव का देवरा' में 10 जून, 2000 को अरवरी नदी की संसद का पहला सत्र लगाया गया। इस बैठक में अरवरी नदी के किनारे बसे 70 गाँवों के लोग सम्मिलित हुए। इन लोगों ने सूखे की स्थिति पर अपने नजरिये से गंभीर विचार विमर्श किया। उन्हें लगा कि पानी और हरियाली बचाने का काम

नौकरशाही के जिम्मे नहीं छोड़ा जा सकता। उन्होंने इस काम का जिम्मा अपने हाथ में लेने का फैसला लिया। उन्होंने यह भी फैसला लिया कि आगे से जंगल से केवल सूखी लकड़ी ही बीन कर लाई जाएगी। कुल्हाड़ी लेकर जंगल जाने वाले पर जुर्माना लगाया जाएगा। जंगल कटते देखने वाले और उसकी शिकायत नहीं करने वालों पर भी दंड की राशि तय की गई। जुर्माना नहीं देने वालों पर सबसे अधिक दंड तय किया गया। अब, अरवरी नदी के समाज के अभिनव प्रजातांत्रिक प्रयोग की कहानी थोड़ा विस्तार से।

अरवरी जल संसद की कहानी, एक छोटी-सी नदी के सूखने और समाज के प्रयासों से उसके जिन्दा होने की कहानी है। नदी के जिन्दा होने का कमाल वैज्ञानिक नहीं अपितु समाज की परम्परागत समझ तथा देशज ज्ञान की बदौलत हुआ है। पहले, हम इस नदी के सूखने के कारणों को संक्षेप में समझ लें फिर समाज के उन देशज प्रयासों की बात करेंगे जो एक सूखी नदी को जिन्दा करने के लिए जिम्मेदार हैं। कहानी इस प्रकार है -

अठारहवीं सदी में अरवरी नदी राजस्थान के अलवर जिले में प्रतापगढ़ नाले के नाम से जानी जाती थी। उस कालखंड में वह सदानीरा थी। उसके कैचमेंट में घने जंगल थे। लोग पशुपालन करते थे। पानी की माँग बहुत कम थी। धीरे धीरे समय बदला, परिवार बढ़े और बढ़ती खेती ने जंगल की जमीन को निगलना शुरू किया। इस बदलाव ने पानी की खपत को तेजी से बढ़ाया। बढ़ती खपत ने जमीन के नीचे के पानी को लक्ष्मण रेखा पार करने के लिए मजबूर किया।

अरवरी नदी के सूखने की कहानी झिरी गाँव से शुरू होती है। इस गाँव में सन 1960 के आसपास संगमरमर की खुदाई शुरू हुई। इसके लिए खदानों में जमा पानी को निकाला गया। लगातार चलने वाली इस प्रक्रिया ने पानी की कमी को बढ़ाया। सन 1960 के बाद के सालों में अरवरी नदी सूख गई। धीरे धीरे जलसंकट आसपास के गाँवों में फैल गया। जल संकट के कारण, पशुओं को आवारा छोड़ने की परिस्थितियाँ बनने लगीं। नौजवान रोजी रोटी के लिए जयपुर, सूरत, अहमदाबाद, दिल्ली की ओर पलायन करने लगे। बचे खुचे लोगों ने विधानसभा के सामने धरना दिया। मुख्यमंत्री तक गुहार लगाई। समस्या का निदान नहीं मिला। समाज की आस टूटी और निराशा हाथ आई। इसी समय तरुण भारत संघ ने इस इलाके को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। गाँव के बड़े बूढ़ों ने उनसे, सब काम छोड़, पानी का काम करने को कहा। जोहड़ बनाने का काम शुरू हुआ। एक के बाद एक जोहड़ बने। ये सब जोहड़ छोटे-छोटे थे। नदी से दूर, पहाड़ियों की तलहटी से प्रारंभ किए गए थे। पहली ही बरसात में वे लबालब भरे। अरवरी नदी सूखी रही पर कुओं में पानी लौटने लगा। लौटते पानी ने लोगों की आस भी लौटाई। सफलता ने लोगों को रास्ता दिखाया। उन्हें एकजुट किया। उनका आत्मबल बढ़ा। सन 1990 में अरवरी नदी में पहली बार, अक्टूबर माह तक पानी बहता दिखा। इस घटना से लोगों का भरोसा मजबूत हुआ। हौसलों को ताकत मिली। काम और आगे बढ़ा। सन 1995 आते आते पूरी अरवरी नदी जिन्दा हो गई। अब अरवरी सदानीरा है। लोगों के मन में सवाल कौंधने लगे - अरवरी नदी को आगे भी सदानीरा कैसे बनाए रखा जाए? उन्हें लग रहा था कि यदि सही इंतजाम नहीं किया तो नदी फिर सूख जाएगी। गाँव वालों ने अरवरी नदी के पानी को साफ सुथरा बनाए रखने तथा जलचरों को बचाने और कैचमेंट के जंगल को सुरक्षित रखने, स्थानीय समाज की भूमिका और समाज के अधिकारों के बारे में सोच विचार प्रारंभ किया। उन्होंने उपर्युक्त मुद्दे पर देश के विद्वानों और पढ़े लिखे लोगों की राय जानने के लिए अरवरी नदी के किनारे बसे हमीरपुर गाँव में 19 दिसम्बर, 1998 को जनसुनवाई कराई। जनसुनवाई में विश्व जल आयोग के तत्कालीन

आयुक्त अनिल अग्रवाल, राजस्थान के पूर्व मुख्य सचिव एम.एल. मेहता, हिमाचल के पूर्व मुख्य न्यायाधीश गुलाब गुप्ता, राजस्थान विश्वविद्यालय के कुलपति टी. के. उन्नीकृष्णन, वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के तत्कालीन सचिव एस. रिजवी जैसे अनेक गणमान्य व्यक्तियों ने भाग लिया। जन सुनवाई में मुद्दई, गवाह, वकील, जज, विचारक, नियंता सब मौजूद थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता जस्टिस गुलाब गुप्ता ने की। गाँव वालों ने अपनी बेवाक राय जाहिर की और बाहर से आए लोगों को ध्यान से सुना।

जन सुनवाई के दौरान राय बनी कि ..... कानून और सरकार कुछ भी कहें, पर मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है। अतः संसाधनों पर पहला हक बचाने वाले का है। पहले वही उपभोग करे, उसी का मालिकाना हक हो। 26 जनवरी 1999 को प्रसिद्ध गांधीवादी सर्वोदयी नेता सिद्धराज ढड्ढा की अध्यक्षता में हमीरपुर गाँव में संकल्प ग्रहण समारोह आयोजित हुआ और 70 गाँवों की अरवरी संसद अस्तित्व में आई। अरवरी संसद, हकीकत में एक जिन्दा नदी की जीवन्त संसद है। लोगों ने अपनी संसद के निम्नलिखित उद्देश्य तय किए -

- प्राकृतिक संसाधनों का संवर्द्धन करना।
- समाज की सहजता को तोड़े बिना अन्याय का प्रतिकार करना।
- समाज में स्वाभिमान, अनुशासन, निर्भयता, रचनात्मकता तथा दायित्वपूर्ण व्यवहार के संस्कारों को मजबूत करना।
- स्वावलम्बी समाज की रचना के लिए विचारणीय बिन्दुओं को लोगों के बीच ले जाना। उन पर कार्यवाही करना।
- निर्णय प्रक्रिया में समाज के अन्तिम व्यक्ति की भी भागीदारी सुनिश्चित करना।
- ग्राम सभा की दायित्वपूर्ति में संसद सहयोगी की भूमिका अदा करेगी, लेकिन जहाँ ग्राम सभा, तमाम प्रयासों के बावजूद निष्क्रिय बनी रहेगी वहाँ संसद स्वयं पहल करेगी।

अरवरी संसद के दायित्व निम्नानुसार हैं -

- संसद में अपनी ग्राम सभा का नियमित तथा सक्रिय प्रतिनिधित्व करना
- ग्राम सभा तथा संसद ..... दोनों के कार्यों, निर्णयों तथा प्रगति से, एक दूसरे को अवगत कराना तथा उनका लागू होना सुनिश्चित करना
- ग्राम सभा के कार्यों एवं दिक्कतों के समाधान में दूसरी ग्राम सभाओं से सहयोग लेना एवं सहयोग देना।

अरवरी नदी का सांसद कौन होगा -

- गाँव की ग्राम सभा द्वारा अरवरी संसद में प्रतिनिधित्व के लिए चुना गया व्यक्ति सांसद होगा। यह ग्राम सभा, सरकारी चुनाव वाली ग्राम पंचायत से पूरी तरह भिन्न संगठन है। यह ग्राम सभा, प्रकृति और समाज के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए बनाई साझी व्यवस्था है।
- अरवरी सांसद का चुनाव सर्वसम्मति से हो। अपरिहार्य स्थिति में भी चयनित प्रत्याशी को ग्राम सभा के कम से कम 50 प्रतिशत सदस्यों का समर्थन अवश्य प्राप्त होना चाहिए।
- सांसद की निष्क्रियता अथवा अन्य कारणों से असन्तुष्ट होने पर चाहे तो ग्राम सभा उसे दायित्वमुक्त कर सकती है। उसकी जगह ग्राम सभा जो भी नया सांसद चुनकर भेजेगी, संसद को वह स्वीकार्य होगा; लेकिन यदि संसद ग्राम सभा को पुनर्विचार के लिए कहेगी, तो ग्राम सभा को पुनर्विचार करना होगा।

अरवरी जल संसद 1999 के गणतंत्र दिवस को अस्तित्व में आई। उसकी नियमित बैठकें होती हैं, फैसले होते हैं और उनका क्रियान्वयन होता है। लोगों के एजेण्डे पर निम्नलिखित विषय हैं -

लोगों ने नदी से सिंचाई करने के लिए कड़े नियम बनाए हैं। नियम बनाते समय स्थानीय

परिस्थितियों एवं नदी घाटी के भूजल विज्ञान को अच्छी तरह समझा गया है। इस कारण लोगों को समझ में आया कि नदी के चट्टानी क्षेत्र में स्थित होने के कारण, उसके एक्वीफर उथले तथा भूजल रीचार्ज क्षेत्र छोटा है। इसलिए थोड़ा सा रीचार्ज होते ही उसका जल भंडार भर कर ऊपर बहने लगता है। इसका अर्थ है नदी जितने जल्दी बहना शुरू होती है उतने ही जल्दी सूखती भी है। इसलिए तय हुआ कि होली के बाद नदी से पानी उठा कर सिचाई नहीं की जाएगी। होली तक सरसों और चने की खेती करने वाले को नदी से पानी उठाने की अनुमति होगी। पशुओं के पीने के पानी और नये पौधों की सिंचाई के लिए कोई बंदिश नहीं होगी।

लोगों ने कुओं से सिंचाई के नियम बनाए। उन्होंने अनुभव की रोशनी में स्थानीय एक्वीफर की स्थिति और उसकी क्षमता को समझा। चूँकि यह पूरा इलाका भूजल की छोटी छोटी धाराओं पर टिका है इसलिए यहाँ ज्यादा गहरे कुएँ या नलकूप बनाना ठीक नहीं है। उन्होंने अरवरी नदी के साल भर बहने की प्रक्रिया के विश्लेषण के आधार पर कानून बनाए और तय किया कि नदी के दो से तीन प्रतिशत पानी का ही उपयोग किया जाए। उन्होंने पानी की कम खपत वाली फसलों को पैदा करने पर जोर दिया। रासायनिक खाद और जहरीली दवाओं का कम से कम उपयोग करने का फैसला लिया। गन्ना, मिर्च और चावल की फसल नहीं लेने देने का इन्तजाम किया। उपर्युक्त फसलों को जबरन लेने वाले लोगों को जोहड़, कुएँ या नदी से पानी नहीं लेने दिया। पानी की बरबादी रोकी और गर्मी की फसलें नहीं लीं। उन्होंने अधिक से अधिक पशु चारा उगाया। चारे की सिंचाई को सुनिश्चित कराया।

लोगों ने पानी की बिक्री पर रोक लगाई। तय किया कि कोई भी व्यक्ति नदी पर इंजन लगाकर पानी की बिक्री नहीं करेगा। पानी का उपयोग व्यावसायिक काम में नहीं होगा। गहरी बोरिंग करने और उसके पानी के बाहर ले जाने पर रोक रहेगी। पानी की बिक्री करने वाले उद्योग नहीं लगने देंगे। गरीब आदमी को पानी की पूर्ति निशुल्क की जाएगी। गरीब को केवल डीजल या बिजली और इंजन की घिसाई का दाम देना होगा। पानी की कीमत लेना दंडनीय अपराध होगा।

संसद ने उद्योगपतियों और भूमि उपयोग बदलने वाले बाहरी व्यक्तियों को जमीन बेचने पर रोक लगाई। संसद को लगता है कि ऐसा करने से बदहाली, प्रदूषण, बीमारी और बिखराव होगा। जमीन की बिक्री गाँव के लोगों के बीच, आपस में ही की जाएगी और जमीन की बिक्री का रुझान रोकने का भरसक प्रयास किया जाएगा। अरवरी संसद के निर्णय के अनुसार अधिक जल दोहन करने वालों का पता लगाया जाएगा और उन्हें नियंत्रित किया जाएगा। पानी का अधिक उपयोग करने वाले कल-कारखाने नहीं लगने देंगे। अतिदोहन को शुरू होने के पहले रोकेंगे और दोहन पर हर समय निगाह रखेंगे।

अरवरी संसद के निर्णय के अनुसार जो व्यक्ति धरती को पानी देगा, वही धरती के नीचे के पानी का उपयोग कर सकेगा। राजस्थान की गर्म जलवायु में पानी का बहुत अधिक वाष्पीकरण होता है इसलिए पानी को वाष्पीकरण से बचाने के लिए उसे बरसात के दिनों में जमीन के नीचे उतारना होगा। स्थानीय एक्वीफर की क्षमता और व्यक्ति की पानी की जरूरत में तालमेल रखने वाले सिद्धान्त का पालन किया जाएगा। जो जल पुनर्भरण का काम करेगा उसे पुनर्भरण नहीं करने वाले की तुलना में अधिक पानी लेने का अधिकार होगा। इस अधिकार की सीमा पुनर्भरण की 15 प्रतिशत होगी। गाँव के लोग और संसद मिलकर एक्वीफर की क्षमता का अनुमान लगाने और क्षमता के अनुसार पुनर्भरण के काम को अंजाम देंगे।

अरवरी संसद ने नदी घाटी के जीव जन्तुओं की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए संसद ने

अरवरी नदी क्षेत्र को 'शिकार वर्जित क्षेत्र' घोषित किया है। संसद ने हर गाँव वाले को जागरूक और प्रशिक्षित करने, शिकार प्रभावित इलाके की पहचान करने और जंगल तथा जीव बचाओ अभियान चलाने की जिम्मेदारी सौंपी है।

अरवरी संसद के सांसदों ने बाजार मुक्त फसल उत्पादन के नियम तथा स्थानीय जरूरत पूरा करने वाली व्यवस्था पर विचार कर फैसला लिया कि क्यों न हम अपनी आवश्यकता की चीजें खुद पैदा करें, अपना बाजार खुद विकसित करें और आपस में लेनदेन करें। ऐसा करने से गाँव का पैसा गाँव में रहेगा और खुशहाली आएगी। गाँव वालों का मानना है कि किसान का सबसे ज्यादा शोषण बाजार ही कर रहा है। इस कारण किसान को अपनी मेहनत का सौवाँ हिस्सा भी नहीं मिल पाता। किसान की सारी आमदनी बीज, दवाई, खाद, फसल बुआई तथा कटाई में खर्च हो जाती है। वे मानते हैं कि नये बीज शुरू में तो अधिक पैदावार देते दिखते हैं पर बाद में जमीन की उर्वरा शक्ति कम कर देते हैं। खेती खराब होने लगती है।

अरवरी संसद ने नदी क्षेत्र में हरियाली और पेड़ बचाने का फैसला किया है। इस काम को पूरा करने के लिए उसने कायदे कानून बनाए हैं। उन्होंने गाँवों की साझा जमीनों और पहाड़ों को हरा भरा रखने के लिए बाहरी मवेशियों की चराई पर बंदिश लगाई है। उन्होंने हरे वृक्ष काटने पर पाबन्दी, दिवाली बाद पहाड़ों की घास की कटाई करने, गाँव गाँव में गोचर विकसित करने, नंगे पहाड़ों पर बीजों का छिड़काव करने, लकड़ी चोरों पर नियंत्रण करने, स्थानीय धराड़ी परम्परा को फिर से बहाल करने, क्षेत्र में ऊँट, बकरी और भेड़ों की संख्या कम करने तथा नई खदानों और प्रदूषणकारी उद्योगों को रोकने का फैसला लिया है। उनका मानना है कि इन कदमों से उनके इलाके की हरियाली बढ़ेगी और नदी बारहमासी बनी रहेगी। उल्लेखनीय है कि अरवरी के ग्रामीण तथा कम पढ़े-लिखे समाज की उक्त देशज समझ किसी भी वैज्ञानिक समझ की तुलना में उन्नीस नहीं अपितु इक्कीस है।

अरवरी नदी के सांसदों ने नियम बनाया कि क्षेत्र में खदानें बन्द कराने का प्रयास किया जाएगा। खदान मालिकों से बातचीत कर समस्या का हल खोजा जाएगा और खदानों द्वारा बरबाद किए इलाकों को दुरुस्त किया जाएगा। अरवरी नदी के जलग्रहण क्षेत्र में प्रकृति के संरक्षण की बहुत अच्छी एवं जीवन्त परम्पराएँ यथा धराड़ी, थाई, देवबनी, देवअरण्य, गोचर तथा मछली और चींटियों की सुरक्षा हैं। अरवरी संसद ने उन परम्पराओं को पुनः जीवित करने का फैसला लिया।

सांसदों ने जल स्रोतों के उचित प्रबन्ध में संसद और ग्राम सभा की भूमिका तथा उसके उत्तरदायित्वों के निर्धारण के लिए स्थायी व्यवस्था कायम की है। उन्होंने जागरूकता और समझदारी की मदद से विकेन्द्रित, टिकाऊ और स्वावलम्बी व्यवस्था कायम की है। नियम और कायदे बनाए हैं और उन्हें लागू किया। अरवरी जल संसद की कहानी, राजस्थान के एक अति पिछड़े इलाके में कम पढ़े लिखे किन्तु संगठित लोगों द्वारा अपने प्रयासों एवं संकल्पों की ताकत से लिखी कहानी है। यह कहानी पानी के उपयोग में आत्मसंयम का सन्देश देती है। यह पानी, जंगल एवं जैवविविधता के पुनर्वास, निरापद खेती और सुनिश्चित आजीविका की विलक्षण कहानी है। इस कहानी की पूरी पटकथा ग्रामीणों ने लिखी है। तकनीकी और जनतांत्रिक संगठनों के लिए इससे सीखने और करने के लिए बहुत कुछ है।

किसान बासप्पा की एकला चलो कहानी

प्रेरणा देती कहानियों की कड़ी में कर्नाटक के साधारण किसान बासप्पा की कहानी बहुत दिलचस्प है। पुणे-बेंगलुरु राजमार्ग पर हवेरी जिले के ककोला गाँव में इस साधारण किसान ने कुओं

के रीचार्ज का देशज तरीका अपना कर 500 से 600 फुट से अधिक गहरे उतरे भूजल के स्तर को 100 फुट पर ला दिया है। इस गाँव के 45 साल के चनवासप्पा शिवप्पा कोम्बाली नाम के साधारण किसान के प्रयासों से सन 1980 से जल संकट भोग रहे गाँव के 116 कुएँ फिर जिन्दा हो गए, किसानों का हौसला लौट आया और जिन्दा हुए कुओं से फिर सिंचाई शुरू हो गई है। जीवन एक बार फिर पटरी पर आ गया है। लोग बरसात की बूँदों की हिफाजत करते हैं, उन्हें सहेजते हैं, इसलिए जल कष्ट की चिन्ता नहीं करते।

बासप्पा की कहानी दिलचस्प है। उसने सात साल पहले कालाघटगी तालुक के सोरासेट्अीकोप्पा गाँव में आयोजित ग्रीन फेस्टीवल में भाग लिया था। इस कार्यक्रम के दौरान उसे रेन वाटर हारवेस्टिंग की जानकारी मिली। इस कार्यक्रम के आयोजकों ने फार्म पॉण्ड की श्रृंखला को आपस में जोड़ने की वकालत की थी। बासप्पा ने इस विचार को काकोला की हकीकत के मद्देनजर अपने देशज अन्दाज में देखा। फार्म पॉण्ड को आपस में जोड़ने की फिलासफी को अपने नजरिए से देखा। बासप्पा के सोच ने उसे नई दिशा दी। उसने गाँव के सारे कुओं को नहरों से जोड़ने के बारे में निर्णय लिया। उसकी नजर में एक कुएँ की पानी सहेजने की क्षमता दस फार्म पॉण्ड के बराबर थी अर्थात उसकी नजर में बरसात के पानी को सहेजने और रीचार्ज करने के लिए कुएँ अधिक सक्षम थे। उसने सन 2002 में काकोला गाँव के सभी कुओं को नहर के माध्यम से इस प्रकार जोड़ा कि बरसात का सारा पानी उनमें एकत्रित हो जाए। उस इलाके की धारवार युग की चट्टानों में मौजूद प्यासे एक्वीफरों ने पानी सहेजने के लिए अपनी झोली फैला दी। बरसात से होने वाली पानी की आपूर्ति के कारण पाताल पहुँचा भूजल स्तर ऊपर उठने लगा। भूजल दोहन और प्राकृतिक आपूर्ति का समीकरण, आपूर्ति के पक्ष में हो गया। समीकरण के बदलने के कारण साल-दर-साल पाताली पानी का स्तर ऊपर उठा और हालात सुधर गए।

गौरतलब है कि कुछ साल पहले तक काकोला गाँव में पानी की उपलब्धता काफी अच्छी थी। लोग पान की परम्परागत खेती करते थे। सन 1980 के शुरुआती दिनों में कुछ कम्पनियों ने, गाँव के लोगों को पान के बीजों के उत्पादन के लिए आकर्षक कीमतें देने का प्रस्ताव किया। बेहतर कीमतों के लालच में किसानों ने पान के बीजों की पैदावार लेना शुरू किया। शुरू शुरू में किसानों को अच्छी कीमतें मिलीं पर पानी की खपत बढ़ने के कारण, यह दौर धीरे धीरे खत्म होने लगा। कुएँ सूखने लगे। किसानों ने नलकूपों का उपयोग शुरू किया पर नलकूपों ने भी लम्बे समय तक साथ नहीं दिया। भूजल धीरे धीरे पाताल में पहुँच गया। पान के बीजों की खेती की बरबादी के साथ साथ किसानों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति खराब होने लगी। बीज कम्पनी, किसानों को बीच मझधार में छोड़, अपना बोरिया बिस्तर लेकर लौट गई। इसी दौर में बासप्पा ने बरसात की हर बूँद को सहेजने का बीड़ा उठाया। अपने आइडिया के बारे में लोगों को बताया तथा साथ देने के लिए कहा। गाँव के लोगों ने उन्हें निराश किया। लोगों को उनके आइडिया पर भरोसा नहीं था। इस प्रारंभिक असफलता ने बासप्पा को दुखी तो किया पर वे निराश नहीं हुए। उन्होंने कुदाली उठाई और बरसात के पानी को कुओं में डालने के लिए नहरों को बनाने के काम में जुट गए। कुछ काम खुद किया तो कुछ काम मजदूरों से कराया। अपना पैसा लगाया। इस दौर में सरकार या समाज से उन्हें कोई मदद नहीं मिली। बासप्पा अपनी कुदाल की मदद से बदलाव की नई इबारत लिखते रहे।

सन 2002 की बरसात में, बरसाती पानी ने नहरों के नेटवर्क की सहायता से आपस में जुड़े कुओं को ऊपर तक भर दिया। गाँव की जियालाजी ने भूजल रीचार्ज की माकूल

परिस्थितियों को पैदा किया। बरसात के बाद परिणाम सामने आए। इस परिणाम के बाद बासप्पा ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। पूरा गाँव इस जल सत्याग्रही के साथ जुड़ गया। जल संचय की शानदार मुहिम को श्रमदान की आहुतियों से नवाजा गया। गाँव के सारे कुएँ, नहरों के नेटवर्क से जुड़ गए। भूजल स्तर धीरे धीरे लगभग 400 फुट ऊपर उठकर 100 से 120 फुट पर आ गया। लगभग 400 एकड़ जमीन की सिंचाई बहाल हो गई। इस पूरे काम को गाँव के लोगों ने अपने श्रम और पैसे से पूरा किया है। काकोला के सरपंच बीरप्पा अधिनावार बताते हैं कि भूजल उपलब्धता बढ़ने के कारण गाँव के लगभग 800 परिवारों को फायदा हुआ है। यह कहानी पानी के लिए जद्दोजहद करने वाले व्यक्ति तथा उसके पीछे एकजुट खड़े समाज की कहानी है। इस कहानी में सरकार या सरकारी अमले की भूमिका या दखलंदाजी नहीं है। तकनीक, कायदे कानून, पैसा और श्रम गाँव वालों का ही है।

बासप्पा की कहानी का तकनीकी पक्ष बहुत महत्वपूर्ण है। काकोला में सफलता का कारण उस गाँव की जमीन के नीचे मिलने वाली आग्नेय और उनके गुणधर्मों से मिलती जुलती अन्य चट्टानें हैं। जमीन के नीचे पाई जाने वाली इन चट्टानों में पानी सहेजने के गुण प्राकृतिक रूप से मौजूद थे। इन्हीं गुणों के कारण सन 1980 के पहले आवश्यकतानुसार पानी मिलता था। पान के बीजों की खेती के लिए जब पानी का दोहन बढ़ा तो प्राकृतिक पूर्ति कम पड़ने लगी। प्राकृतिक पूर्ति की कमी के कारण दोहन प्रतिकूल असर दिखाने लगा। इसीलिए संकट की शुरुआत हुई। भूजल का स्तर 500 फुट नीचे चला गया। तकनीकी भाषा में सामान्य प्राकृतिक रीचार्ज और भूजल दोहन का सन्तुलन बिगड़ा। बरसात द्वारा होने वाला रीचार्ज कम पड़ने लगा। एक्वीफर आधे अधूरे भरने लगे। पर जब कुओं को आपस में जोड़कर एक्वीफरों में अधिक पानी पहुँचाया तो रीचार्ज की मात्रा बढ़ गई। अधिक मात्रा में रीचार्ज हुआ। माँग की तुलना में अधिक पूर्ति होने के कारण भूजल स्तर में बढ़ोतरी दर्ज हुई। यही कहानी का तकनीकी पक्ष है जिसे अच्छी तरह समझकर समाज ने समस्या का हल खोजा। इस उपलब्धि के पीछे सहज बुद्धि पर आधारित विज्ञान है।

कहानी पेरूमेट्टी पंचायत और कोका कोला की

यह कहानी प्रजातांत्रिक संस्था तथा बाजार के टकराव की कहानी है। इस कहानी के पात्र हैं - केरल के पेरूमेट्टी की पंचायत और हिन्दुस्थान कोका कोला बेवरिज प्रायवेट लिमिटेड। कहानी की खास बातें और मुख्य घटनाएँ इस प्रकार हैं।

हिन्दुस्थान कोका कोला बेवरिज प्रायवेट लिमिटेड ने 8 अक्टूबर 1999 को प्लाचीमाडा गाँव में बाटलिंग प्लाण्ट स्थापित करने के लिए पेरूमेट्टी पंचायत को दरख्वास्त दी। पेरूमेट्टी पंचायत ने 27 जनवरी सन 2000 को हिन्दुस्थान कोका कोला बेवरिज प्रायवेट लिमिटेड को प्लाचीमाडा गाँव में फैक्टरी लगाने और 2600 हार्सपावर की बिजली का मोटर पम्प लगाने की अनुमति दी। कोका कोला फेक्टरी लगने के कारण पंचायत को 4.65 लाख बिल्डिंग का टैक्स, तीस हजार लाइसेंस की फीस और 1.5 लाख प्रोफेशनल टैक्स के रूप में मिले। कोका कोला फेक्टरी लगने के कारण 150 लोगों को स्थायी नौकरी और लगभग 250 लोगों को अस्थायी मजदूरी मिली।

सन 2002 के शुरुआती दिनों में प्लाचीमाडा गाँव के लोगों को पानी की गुणवत्ता में अन्तर अनुभव हुआ। रासायनिक परीक्षणों में पता चला कि पानी में केडमियम की मात्रा सुरक्षित सीमा से काफी अधिक है। बी.बी.सी. की जाँच में केडमियम की मात्रा एक किलोग्राम पानी में 100 मिलीग्राम पाई गई। केरल राज्य के प्रदूषण मंडल ने प्लाचीमाडा के पानी के नमूनों की जाँच जनवरी, अगस्त और सितम्बर में की। जाँच में भिन्नता पाई

गई और केडमियम की मात्रा क्रमशः शून्य, 201.8 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम एवं 36.5 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम और कोका कोला की जाँच में केडमियम की मात्रा सुरक्षित सीमा में पाई गई। उद्योग और रोजगार का सपना टूटने लगा।

सन 2002 के शुरुआती दिनों में पानी की गुणवत्ता की खराबी के कारण प्लाचीमाडा के गाँव वालों ने 22 अप्रैल 2002 को कोको कोला फेक्टरी के विरुद्ध प्रदर्शन किया। सात अप्रैल 2003 को पेरूमेट्टी पंचायत ने लोगों की शिकायत के आधार पर हिन्दुस्थान कोका कोला बेवरिज प्रायवेट लिमिटेड को दी अनुमति निरस्त कर दी और नौ अप्रैल को कम्पनी को नोटिस जारी किया। बाइस अप्रैल 2003 को हिन्दुस्थान कोका कोला बेवरिज प्रायवेट लिमिटेड ने केरल हाईकोर्ट में पेरूमेट्टी पंचायत के नोटिस के विरुद्ध पिटीशन दायर की। दिनाँक छह मई 2003 को सुनवाई के लिए हिन्दुस्थान कोका कोला बेवरिज प्रायवेट लिमिटेड के प्रतिनिधि पेरूमेट्टी पंचायत के सामने पेश हुए। पंचायत ने अपने फैसले को यथावत रखा। 16 मई 2003 को केरल हाईकोर्ट ने पंचायत के फैसले पर रोक लगा दी और कोका कोला फैक्टरी को राज्य सरकार के स्थानीय प्रशासन विभाग के समक्ष अपनी पिटीशन पेश करने को कहा। कोका कोला ने 22 मई 2003 को स्थानीय प्रशासन विभाग के समक्ष अपनी पिटीशन दायर की। स्थानीय प्रशासन विभाग ने दोनों पक्षों को सुना और 13 अक्टूबर 2003 के अपने आदेश में कोका कोला का पक्ष लिया और पंचायत के आदेश पर प्रश्न चिह्न लगाया और उसे एक्सपर्ट कमेटी गठित करने का आदेश दिया। पंचायत ने स्थानीय प्रशासन विभाग के आदेश के विरुद्ध केरल हाई कोर्ट में अपील की। केरल हाई कोर्ट ने पंचायत के हक में फैसला दिया। कोका कोला ने उच्चतम न्यायालय में फैसले के विरुद्ध अपील की। तकनीकी नुक्ते के कारण उच्चतम न्यायालय में पंचायत की हार हुई।

केरल राज्य के भूमिगत जल विभाग के आँकड़ों के अनुसार अप्रैल 2002 और मई 2003 के प्लाचीमाडा गाँव के 19 में से 11 कुओं के जल स्तर में बहुत अधिक गिरावट देखी गई। यह गिरावट क्षेत्रीय स्तर पर भी मौजूद है। भूजल विभाग की नवम्बर 2002 की रिपोर्ट में कुओं के पानी में कुल घुलित लवणों की मात्रा में बढोतरी का उल्लेख है।

उल्लेखनीय है कि इस कहानी में केरल राज्य के प्लाचीमाडा गाँव की संवेदनशील पंचायत ने राजस्व (आर्थिक लाभ) और ग्रामीणों को मिले रोजगार के अवसरों को त्याग कर पानी में बढ़ते प्रदूषण और सेहत पर गहराते संकट के विरुद्ध कोकाकोला कम्पनी से आरपार की लड़ाई मोल ली। यह कहानी पानी में बढ़ते प्रदूषण और सेहत पर गहराते संकट की अनदेखी करने वाले लोगों से कुछ कहती है। लोगों की सेहत की अनदेखी के स्थान पर कुछ अच्छा करने के लिए प्रेरणा देती है।

नदी के पानी की बिक्री का प्रतिकार करता समाज

छत्तीसगढ़ में शिवनाथ नदी के 23.5 किलोमीटर की लंबाई में उपलब्ध पानी को लीज पर देने की कहानी तत्कालीन मध्यप्रदेश औद्योगिक केन्द्र विकास निगम और रेडियस वाटर लिमिटेड के बीच हुए समझौते के बाद शुरू हुई। यह कहानी सरकारी फैसले को समाज द्वारा नकारने की कहानी है। यह समझौता दुर्ग जिले में स्थित बोरई औद्योगिक क्षेत्र में प्रस्तावित इकाइयों को पानी की नियमित जलापूर्ति के लिए किया गया था। इस फैसले के अनुसार रेडियस वाटर लिमिटेड (निजी कम्पनी) अपनी पूँजी लगाकर पानी को जमा करने के लिए आवश्यक निर्माण कार्य करेगी। निर्माण कार्यों में अपनी विशेषज्ञता का उपयोग करेगी, जलपूर्ति संयत्र का संचालन और प्रबन्ध करेगी। पानी का संरक्षण कर उसकी आपूर्ति सुनिश्चित करेगी। यह पूरा काम बनाओ,

सँभालों, संचालित करो और अन्त में ट्रांसफर करो समझौते के आधार पर किया गया था। इस समझौते के बिन्दु 5.3 के अनुसार राज्य सरकार को रेडियस वाटर लिमिटेड से प्रति दिन चार मिलियन लिटर पानी खरीदना और उसकी लागत का भुगतान अनिवार्य था। अनुबन्ध में लिखी शर्तों के कारण, पानी की कम खरीदी की हालत में सरकार को 40 लाख लिटर पानी की कीमत का ही भुगतान करना था। इस अनुबन्ध के लागू होने के बाद रेडियस वाटर लिमिटेड ने नदी के 23.5 किलोमीटर लम्बे नदी पथ (जलक्षेत्र) के पानी पर अपनी मिल्कियत कायम कर समाज को पानी लेने से वंचित कर दिया था।

शिवनाथ नदी की कहानी का कानूनी पक्ष जानना दिलचस्प है। छत्तीसगढ़ राज्य की जलनीति का पैरा 4.2 (2) जल संसाधनों के विकास में निजी निवेश का स्वागत करता है। पैरा 4.3 (3) औद्योगिक इलाकों में पानी के वितरण एवं इंतजाम के लिए निजी क्षेत्र के स्वागत के लिए पलक पाँवड़े बिछाए नजर आता है। गौरतलब है कि पानी का स्वामित्व, राज्य के जल संसाधन विभाग का है जबकि अनुबंध सरकार के एक निगम ने किया है। अनुबंध की दूसरी खास बात यह है कि अनुबंध के पहले जल संसाधन विभाग (पानी के अधित विभाग) की सहमति नहीं ली गई और प्रक्रियाओं का पालन नहीं किया गया। खैर सिविल सोसाइटी, एन.जी.ओ. और एक्टिविस्टों के विरोध के कारण कम्पनी से समझौता रद्द हो गया है। समाज के हित बहाल हो गए हैं। पर यह घटनाचक्र लोगों के मन में एक गहरी टीस छोड़ गया है।

सुन्दरलाल बहुगुणा

सुन्दरलाल बहुगुणा का कार्यक्षेत्र पानी, मिट्टी और जंगल है। चिपको आन्दोलन के कारण उन्हें प्रसिद्धि मिली। चिपको आन्दोलन के सिलसिले में उन्होंने कोहिमा से लेकर कश्मीर तक और नेपाल-भूटान सहित पूरे हिमालय की पद

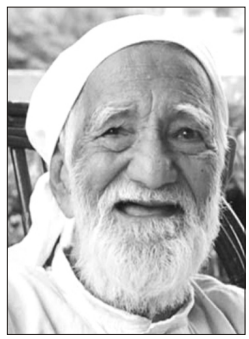

यात्रा की और सारी दुनिया को प्रति संरक्षण का सन्देश दिया। टिहरी बाँध के विरोध ने उन्हें, गरीबों के हितैषी के रूप में स्थापित किया। वे आज भी टिहरी बाँध के निकट, गंगा के तट पर कुटिया में रहते हैं और समाज के लिए काम कर रहे हैं। सुन्दरलाल बहुगुणा को भारत सरकार का पद्म भूषण तथा राइट लाइवलीहुड अवार्ड मिल चुका है। राइट लाइवलीहुड अवार्ड को नोबेल पुरस्कार के समतुल्य माना जाता है।

चण्डी प्रसाद भट्ट

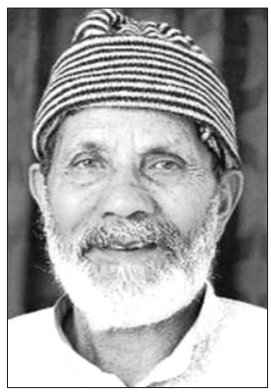

चण्डीप्रसाद भट्ट का जन्म 23 जून, 1934 को रुद्रनाथ मंदिर के पुजारी गंगाराम भट्ट के घर हुआ था। चण्डीप्रसाद भट्ट ने पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं को जोड़ने और उनकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने में अहम भूमिका का निर्वाह किया है। उन्होंने, चिपको आन्दोलन के पहले, सन 1973 में चमोली के मंडल ग्राम में, चिपको का प्रयोग कर ग्रामवासियों की सहायता से वृक्षों को कटने से बचाया था। वे इन दिनों इको-डेवलपमेंट के काम में संलग्न हैं। उनके नेतृत्व में पौधरोपण, शिविरों का आयोजन, पंचायत स्तर पर ग्राम मंगल दलों की गतिविधियाँ चल रही हैं। सन 2003 में उन्हें नेशनल फारेस्ट कमीशन का सदस्य बनाया गया। सन 1983 में उन्हें पद्मश्री तथा सन 2005 में पद्म भूषण से

सम्मानित किया गया। सन 2008 में गोविन्द बल्लभ पन्त विश्वविद्यालय ने उन्हें डाक्टरेट की मानद उपाधि से सम्मनित किया है।

चण्डीप्रसाद भट्ट ने सन 1956 में जयप्रकाश नारायण से प्रभावित होकर गांधीवाद के प्रचार प्रसार और शराबबन्दी पर काम किया था। उनका अन्य, अति महत्वपूर्ण पर्यावरणी योगदान, हिमनदियों के पिघलने और उनके पिघलने के कारण हिमालयीन नदियों पर मंडराते आसन्न संकट पर सरकार और समाज का ध्यान आकर्षित करना है। वे अत्यन्त सक्रिय पर्यावरणविद के रूप में पूरी दुनिया में जाने जाते हैं।

रवि चोपड़ा

डा. रवि चोपड़ा आधुनिक वैज्ञानिक हैं। उनका कार्यक्षेत्र पर्यावरण, विज्ञान, टेक्नोलॉजी और पानी है। वे पीपुल्स साइंस इंस्टीट्यूट देहरादून तथा हिमालयन फाउण्डेशन, नई दिल्ली के प्रबंध न्यासी हैं। इन दोनों संस्थानों की प्रतिबद्धता जल संसाधनों का प्रबंध, पर्यावरण की रक्षा, आपदाओं की रोकथाम और नदियों के संरक्षण के क्षेत्र में नई पद्धति से किए जा रहे अनुसंधान तथा विकास में है। रवि चोपड़ा इस मिशन को आगे ले जा रहे हैं। उनका उद्देश्य विज्ञान तथा तकनीक की मदद से कमजोर वर्ग तथा गरीबों की मदद और सम्बद्ध जनों को दृष्टिबोध उपलब्ध कराना है। उन्होंने अनेक किताबें लिखी हैं। जल संसाधन विकास तथा सामुदायिक सेवा पर उनके 20 से अधिक अनुसन्धान तथा नीति सम्बन्धी दस्तावेज उपलब्ध हैं।

रवि चोपड़ा ने सन 1982 में 21वीं सदी में भारत में जल संकट की प्रकृति, पानी की सकल आवश्यकता और संकट के समाधान पर नागरिक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। इस प्रतिवेदन ने उन्हें राष्ट्रव्यापी मान्यता दिलाई। वे पिछले अनेक वर्षों से पर्यावरण रक्षा और देश के संसाधनों के विकास पर कार्यरत संस्थाओं को मार्गदर्शन भी उपलब्ध करा रहे हैं। वे अनेक सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं के अलावा गंगा नदी घाटी अथार्टी तथा ग्रामीण विकास मंत्रालय की स्टीयरिंग कमेटी के सदस्य हैं। उनका मिशन गरीबों को शक्तिसम्पन्न बनाकर तथा प्राकृतिक संसाधनों के उत्पादक, जीवनक्षम एवं भेदभाव रहित उपयोग की सहायता से गरीबी उन्मूलन के प्रयासों को मदद देना है।

बलबीर सिंह सीचेवाला

बलबीर सिंह सीचेवाला का कार्यक्षेत्र नदी, जल और वृक्षारोपण है। उन्होंने सन 2004 में अपने शिष्यों के साथ सतलज की सहायक काली बेई नदी की सफाई का बीड़ा उठाया था। वे मन-वचन-कर्म से उस काम में जुट गए। उनकी दृढ़ता और संकल्प ने समाज के अनेक लोगों की सोई चेतना को जगाया और नदी को साफ करने वाले लोगों की संख्या बढ़ती गई। भू-माफिया तथा प्रशासन की लालफीताशाही, उनके इरादों के सामने, नहीं टिक सकी। उन्होंने, गंदे नाले में तब्दील काली बेई नदी को लगभग छह साल के अथक परिश्रम के बाद सदानीरा और शुद्ध पानी की नदी में बदल दिया। उनके अनुसार प्रकृति की सेवा ही सच्चा धर्म है। उनकी मान्यता है कि काली बेई नदी की सफाई पूरी मानवता की भलाई के लिए है। काली बेई नदी की सफाई से बढ़कर ज्यादा पवित्र काम कुछ नही है। उनका संदेश है - जागो और नरक बनती, सड़ती नदियों को बचाने के लिए उठ खड़े होओ। गुरुबानी कहती है कि ईश्वर की रचना को सँजोना बेहतर है।

उजली संभावनाओं का उषाकाल

पानी और प्रकृति की कहानी अन्ना हजारे, अनुपम मिश्र, राजेन्द्र सिंह, पी.आर. मिश्रा, सुन्दरलाल बहुगुणा, चण्डीप्रसाद भट्ट, बासप्पा, रवि चोपड़ा, पोपटराव पवार, बलबीर सिंह सींचेवाला या पेरूमेट्टी पंचायत पर खत्म नहीं होती। दक्षिण गुजरात में हरीभाई पारिख और

झीणाभाई दरजी, एक्शन फार फुड ने जालना महाराष्ट्र में, ओडिशा के ढेंकानल में पीपुल्स इंस्टीट्यूट फार पार्टिसिपेटरी एक्शन रिसर्च जैसे सैकड़ों गुमनाम लोगों और संस्थाओं ने जल संरक्षण, वन संरक्षण तथा प्राकृतिक परिवेश को सुधारने तथा उसे संरक्षित करने का काम किया है और कर रहे हैं। आगे भी करेंगे। कुछ और भी लोग हैं जो अपनी शैली में देश की जनता और जिम्मेदार लोगों से बरसों से चर्चा कर रहे हैं। आज भी खरे हैं तालाब, बूँदों की संस्कृति जैसी किताबों के क्रम में सेन्टर फार साइंस एण्ड इन्वायरोन्मेंट, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'बूँदों की संस्कृति' का योगदान किसी भी तरह कम नहीं है। यह किताब भारत की पारम्परिक जल संचय प्रणालियों के विकास, ह्रास और उनमें अब भी मौजूद उजली संभावनाओं पर देश में प्रकाशित सबसे अधिक प्रामाणिक पुस्तक है। किताब कहती है कि परम्परागत ज्ञान को बदली परिस्थितियों में यथावत स्वीकार नहीं किया जा सकता पर उसके कालजयी सिद्धान्तों की अनदेखी नामुमकिन है। यह बदलते हालात का युग है। यह उजली संभावनाओं का उषाकाल है। उगता सूरज, समाज के अभ्युदय की प्रतीक्षा कर रहा है।

सवाल - हम ही क्यों

बहुत से लोगों के मन में यह सवाल कौंध सकता है और वे पूछ सकते हैं कि इस पानी और प्रकृति जैसे गंभीर विषय पर हम क्यों आगे आएँ? यह तो सरकार की जिम्मेदारी है। इस पर तो सरकार, उसके संबंधित विभाग, नगरीय निकाय, पंचायत या स्वयं सेवी संस्थाओं को काम करना चाहिए। यह उनका कार्यक्षेत्र है। उनके अलावा, औद्योगिक घरानों को अपनी सामाजिक जिम्मेदारी के अन्तर्गत जल संकट के निदान के लिए काम करना चाहिए। जन प्रतिनिधि अपने बजट (सांसद निधि / विधायक निधि) से अपने अपने निर्वाचन क्षेत्र में काम कर सकते हैं। क्या सरकार हमें काम करने देगी? क्या यह सरकार के कामों में दखलन्दाजी नहीं होगी? इन सब विभागों तथा संस्थाओं के रहते हम क्यों? हमारे पास तो वांछित तकनीकी ज्ञान, धन तथा अनुभव भी नहीं है। समय की भी कमी है। ढेर सारी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ हैं। और भी अनेक सवाल हैं जो हमारे मन में हो सकते हैं या काम करते समय सामने आ सकते हैं। इसी क्रम में कुछ लोग यह भी पूछ सकते हैं कि हमें इन विषयों पर चर्चा करने की आवश्यकता क्यों पड़ी? यदि हम समय निकाल कर चर्चा करते भी हैं तो हमारी भूमिका तथा जिम्मेदारी क्या होगी? उपर्युक्त सभी बिन्दुओं पर चर्चा करने के पहले प्रासंगिक है कि हम सुखोमाजरी की कहानी को संक्षेप में जान लें।

सुखोमाजरी इलाके के लोगों का मुख्य धन्धा पशुपालन है। यह इलाका चण्डीगढ़ की चक्रवर्ती झील के कैचमेंट में स्थित है। जंगल कटने के कारण इलाके में भूमि कटाव बहुत बढ़ गया। भूमि कटाव से गाद उत्पन्न हुई और वह चक्रवर्ती झील में जमा होने लगी। गाद के अतिशय जमाव के कारण चक्रवर्ती झील के पट जाने का खतरा उत्पन्न हो गया। इसी दौरान, पी.एस. मिश्रा जो उस इलाके के वन अधिकारी थे, ने ग्रामीणों की भागीदारी से मिट्टी और पानी के संरक्षण का काम कराया। इस काम को करने से भूमि कटाव कम हुआ। सुखोमाजरी में घास का उत्पादन बढ़ा। सुखोमाजरी में लोगों द्वारा स्थापित सामाजिक नियंत्रण एवं लाभों के बँटवारे की व्यवस्था कायम हुई। उससे पशुपालक समाज की आजीविका को सहारा मिला। पशुपालन गतिविधियों को लाभ मिला। दूसरी ओर, गाद कम बनी। चक्रवर्ती झील के पटने का खतरा घटा। सुखोमाजरी का पहला सन्देश था - प्राकृतिक घटकों का समावेशी विकास ही प्राकृतिक संसाधनों और जैवविविधता को समृद्ध कर सकता है। सुखोमाजरी का दूसरा सन्देश है - प्राकृतिक संसाधनों को समृद्ध कर और उनका नियंत्रण समाज को सौंपकर, गरीबी कम

की जा सकती है। दोनों सन्देश एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

सुखोमाजरी की कहानी के दो अध्याय हैं। पहले अध्याय में इसे सफलता की कहानी के रूप में बरसों सराहा गया था क्योंकि उस दौरान समाज के हाथ में व्यवस्था और फैसलों की बागडोर थी तथा सरकार की भूमिका सहयोगी की थी। दूसरा अध्याय उस समय सामने आया जब इलाके पर जंगल के कानूनों ने बागडोर सँभाली। जंगल के कानूनों के बागडोर सँभालते ही सुखोमाजरी के लोगों द्वारा स्थापित सामाजिक नियंत्रण एवं लाभों के बँटवारे की व्यवस्था ने दम तोड़ दिया और समाज की उपेक्षा के कारण प्राकृतिक संसाधनों का हाल बदहाल होने लगा। बदली व्यवस्था और लादे प्रावधानों के कारण लोगों का सुख चैन और आमदनी का जरिया तिरोहित हो गया। सुखोमाजरी की कहानी पी. आर. मिश्रा की कहानी नहीं है। वह कहानी है प्राकृतिक संसाधनों के लाभों से जुड़े उस समाज की, जिसने प्रतिदिन सोने का एक अंडा देने वाली मुर्गी (प्राकृतिक संसाधनों) को मारने के बजाय उससे रोज एक अंडा प्राप्त करना हितकर माना। यह प्राकृतिक संसाधनों के प्रति समाज का दृष्टिबोध है। समाज उस व्यवस्था का पक्षधर है जो उनके हितों की रक्षा करती है। जब तक प्राकृतिक संसाधनों ने लोगों की आजीविका को सहारा दिया, फैसलों में समाज मुख्यधारा में रहा, तब तक प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और दोहन में असन्तुलन नहीं पनपा। जिस दिन हालात प्रतिकूल हुए, मुर्गी (प्राकृतिक संसाधन) मर गई। प्राकृतिक संसाधनों के नष्ट होने पर समाज ने शोक भी प्रगट नहीं किया। ज्योंही उसके हाथ से नियंत्रण तथा प्रबन्ध छिना उसने प्राकृतिक संसाधनों के बिगाड़ की अनदेखी प्रारंभ कर दी। सन्देश साफ है - कोई भी व्यक्ति या समाज अपने हितों की अनदेखी को पसन्द नहीं करता। आजीविका तथा सामाजिक सरोकारों की अनदेखी करने वाला कोई भी कानून या व्यवस्था, संसाधनों की रक्षा नहीं कर सकती। समाजिक सरोकार सबके ऊपर है।

समाज की अपेक्षाओं को उजागर करता एक सर्वेक्षण

मध्यप्रदेश में सन 1999 में जल संसाधनों के स्वामित्व एवं प्रबन्ध से जुड़े अधिकारों पर एक सर्वेक्षण हुआ था। इस सर्वेक्षण में पानी पर अधिकारिता (सरकार, पंचायत या वाटरशेड कमेटी) को लेकर इन बिन्दुओं पर ग्रामीणों का अभिमत प्राप्त किया गया था। यह अध्ययन मध्यप्रदेश सरकार के ग्रामीण विकास विभाग ने कराया था। इस अध्ययन में उन कतिपय गाँवों को सम्मिलित किया गया था जहाँ जन सहभाग आधारित जलग्रहण विकास कार्यक्रम चल रहा था या पूरा हो चुका था। इन गाँवों में अभिमत एकत्रित करने के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं का उपयोग किया गया था और पहले से तैयार प्रपत्रों में किसानों, खेतीहर मजदूरों, शिक्षित, अशिक्षित, गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले एवं ग्रामीण उद्यमियों इत्यादि के अभिमत को दर्ज किया गया था। उत्तर देने वाले लोगों में सामान्य, पिछड़ी जाति, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जन जाति की महिलाओं एवं पुरुषों को सम्मिलित किया गया था। उत्तर देने वालों में वे लोग भी सम्मिलित थे जो विभिन्न कारणों से पलायन करते हैं।

इस अध्ययन में लोगों से निम्नलिखित बिन्दुओं पर अभिमत प्राप्त किया गया था -

- गाँव में पानी की उपलब्धता की स्थिति
- वर्तमान जल नीति की विसंगतियाँ
- भूजल उपयोग के नियम कायदे
- उपयोग की प्राथमिकताएँ
- भूजल दोहन के नियंत्रण में सरकार, पंचायत, ग्राम सभा या वाटरशेड कमेटी के अधिकार
- अनियंत्रित जल दोहन व्यवस्था पर समाज के नियंत्रण में समाज की भूमिका

- समाज नियंत्रित जल प्रबन्ध हेतु नीति का विकास

इस अध्ययन के परिणाम बेहद चौंकाने वाले थे। ग्रामीण लोगों ने साफ तौर पर गाँव की अनौपचारिक ग्राम सभा को महत्व देने की बात कही। उन्होंने पानी पर सरकार या पंचायत के स्थान पर अनौपचारिक ग्राम सभा के नियंत्रण की वकालत की थी। इस अध्ययन के परिणामों से पता चलता है कि समाज को अपने खुद के द्वारा बनाए नियम कायदों पर अधिक विश्वास है। वे पानी के प्रबन्ध पर खुद का नियंत्रण चाहते हैं। सन्देश साफ है - पानी से सम्बद्ध स्थानीय समस्याओं का, हितग्राहियों द्वारा बनाए नियमों द्वारा प्रबन्ध तथा नियंत्रण। ये सभी उदाहरण आशा जगाते हैं और समाज को सशक्त भी बनाते हैं।

देश और दुनिया में दो कार्यप्रणालियाँ प्रचलन में हैं। पहली कार्यप्रणाली के अन्तर्गत प्राकृतिक संसाधनों के विकास का काम सरकार करती है। यह आधुनिक माडल है। यह माडल प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की बुनियाद पर आधारित है। इस माडल को उसकी उपलब्धियों के साथ साथ विसंगतियों और खामियों के आईने में देखना उचित होगा। वह चेहरा समाज और सरकार को, आने वाले दिनों की संभावित विकृतियों का भी भान कराता है। दूसरी कार्यप्रणाली, समाज द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के विकास का काम अपने हाथ में लेने की अवधारणा पर आधारित हैं। इस अवधारणा के प्रताप से अन्ना हजारे ने रालेगाँव सिद्धी, महाराष्ट्र में सूखा प्रवण एव 400 मिलीमीटर बरसात वाले पहाड़ी गाँव में वाटरशेड अवधारणा पर समाज के साथ काम कर इतना पानी उपलब्ध करा दिया कि लोगों के लिए खेती करना फायदे का सौदा बन गया है। अनुपम मिश्र ने बिना सरकार के दखल के, तालाबों पर काम करने वालों की एक नई पीढ़ी पैदा कर दी। राजेन्द्र सिंह ने कम वर्षा वाले चट्टानी इलाकों में सूखी नदियों को जिन्दा कर दिया। सूखे इलाके को दो फसली सिंचित इलाके में बदल दिया। इस सूची में उन सभी उदाहरणों को सम्मिलित किया जा सकता है जिनकी पूर्व में चर्चा की जा चुकी है। उन सभी उदाहरणों में विभिन्न कारणों तथा परिस्थितियों के कारण समाज सामने आया था। वह धारा की विपरीत दिशा में बहने का भी उदाहरण है। संभवतः उठ खड़े हुए जिन्दा समाज को लगता हो कि धारा में तो मुर्दे बहते हैं। हो सकता है उसे इकबाल का वह प्रसिद्ध शेर याद आ गया हो जिसमें शायर ने कहा था कि खुदी को कर बुलन्द इतना कि खुदा बन्दे से खुद पूछे, बता तेरी रजा क्या है? हो सकता है, इसीलिए उसने अपनी समस्याओं का निराकरण करते समय विभागों, संस्थाओं, औद्योगिक घरानों, जन प्रतिनिधियों, तकनीकी क्षमता, धन, अनुभव और समय से जुड़े सवाल नहीं उठाए और अपने मजबूत इरादों पर विश्वास जताया। इन सारे उदाहरणों से केवल एक ही बात उभरती है कि जल संकट से उबरने के लिए अभी भी संभावनाओं के आसमान में उम्मीद का सूरज मौजूद है। समाज का साथ मिल जावे तो वह अभी भी रोशनी बिखेर सकता है। लोगों के मिलने नहीं अपितु जुड़ने से समाज बनता है। तभी एक और एक मिलकर ग्यारह बनते हैं। इस कारण पहले बात आम जन के योगदान की।

आम जन का योगदान

सभी जानते हैं कि स्वच्छ तथा पर्याप्त पानी हमारे जीवन के लिए बेहद आवश्यक है। वह धरती पर मौजूद वनस्पतियों, जलचरों तथा नभचरों के लिए भी उतना ही आवश्यक है। इन आवश्यकताओं के कारण जल स्रोतों की निर्मलता और पानी की पर्याप्तता आवश्यक है। नदियों की अविरलता और निर्मलता आवश्यक है।

पानी के बढ़ते संकट के कारण संभवतः वह घड़ी बहुत करीब आ गई है जब पानी से जुडे मामलों पर समाज की भागीदारी और दखल की आवश्यकता महसूस हो रही है। पहला कारण तो

यह है कि भारत प्रजातांत्रिक देश है। प्रजातांत्रिक देश में नागरिकों को उन सारी बातों पर बोलने, अपनी राय रखने तथा सक्रिय भागीदारी का अधिकार है जो उनके जीवन पर असर डालती हैं। विदित है कि अनेक इलाकों में पानी की उपलब्धता और गुणवत्ता जीवन पर असर डालने लगी है। समाज की भागीदारी तथा दखल का दूसरा कारण, योजनाओं की प्लानिंग से जुड़ा है। अनुभव बताता है कि वही प्लानिंग अधिक सफल होती है जिसका निर्धारण अधिकार सम्पन्न, विवेकी तथा हितग्राही नागरिकों की सक्रिय भागीदारी और सहमति से हुआ हो। पूर्व में वर्णित उदाहरण लाइटहाउस की तरह हैं। वे रोशनी दिखाते हैं तथा हमारी हौसला अफजाई करते हैं। उन सब उदाहरणों का स्पष्ट संदेश है कि पानी के समग्र विकास में नागरिकों की भागीदारी तथा दखल होना ही चाहिए। उल्लेखनीय है कि पिछले कुछ सालों से सरकारें भी समाज की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए प्रयासरत हैं। इस पृष्ठभूमि में हमें अपना नागरिक दायित्व पालन के लिए आगे आना चाहिए। यह बहुत बड़ा कारण है हमारी सहभागिता के लिए। यही इस चर्चा का सन्देश भी है और उत्तर है उस सवाल का कि आखिर हम ही क्यों?

जब हम पानी और प्रकृति पर चर्चा करेंगे तो हमारे साथ बहुत से लोग होंगे। निश्चय ही उनकी पृष्ठभूमि अलग अलग होगी। पृष्ठभूमि के अलग होने के कारण लोगों की जानकारी तथा दक्षता अलग-अलग होगी। दक्षता का क्षेत्र अलग होगा। उसका स्तर भी अलग अलग होगा। कहने-सुनने का अन्दाज भी अलग अलग होगा। उनका योगदान भी अलग अलग होगा। भागीदारी भी अलग अलग होगी। सुझाव है कि प्रत्येक बैठक के लिए, अध्यक्ष के स्थान पर समन्वयक चुनें जो सहज होकर सबके विचार सुन सकें। जो प्रेम तथा सद्भाव के वातावरण में सब को अपनी बात रखने के लिए अवसर दे सकें। उनका काम होगा - भटकाव रोकना तथा सुझावों को पानी के मुद्दे से जुड़े बिन्दु पर केन्द्रित रखना। सुझावों पर कैसे अमल हो - अमल की रणनीति पर सुझाव प्राप्त करना। क्रियान्वयन के लिए रोडमेप तैयार कराना। और भी बातें जो आवश्यक हों। अब सहभागिता से जुड़ी कुछ प्रासंगिक बातें विस्तार से।

हर व्यक्ति, किसी न किसी विधा में पारंगत होता है। कुछ मामलों में उसका ज्ञान होता है तो कुछ मामलों में उसका अनुभव होता है। कुछ मामलों में वह सीखना चाहता है। कुछ मामलों में वह अपना ज्ञान बाँटना चाहता है। यह विविधता हमें बैठकों में दिखाई देगी। लोग विभिन्न तरीकों से अपनी बात कहेंगे। कुछ लोग तर्क की सहायता से तो कुछ लोग मुहावरों, नारों, कहावतों इत्यादि की मदद से अपना ज्ञान साझा करेंगे। हम जानते हैं, पानी को लेकर हर भाषा में देशज कहावतें, मुहावरे और लोकोक्तियाँ हैं। ये सूत्रों की तरह होती हैं और बिना लागलपेट के सीधा सन्देश देती हैं। बैठकों में सारगर्भित बात को कम से कम शब्दों में कहने का यह सबसे सटीक तरीका है। हो सकता है कुछ लोग उनका उपयोग करें। समन्वयक को सबके विचारों को धैर्यपूर्वक सुनना होगा।

अब कुछ बात पानी को सहेजने की प्रणालियाँ तथा परम्पराओं की। उल्लेखनीय है कि कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और अरुणाचल से लेकर गुजरात तक पानी सहेजने की परम्परागत प्रणालियाँ तथा परम्पराएँ हैं। बहुत से लोगों को उनकी जानकारी है पर बहुत ही कम लोगों को उनके पीछे छुपे भारतीय जल विज्ञान की जानकारी है। सुझाव है, उस परम्परागत ज्ञान को आज के परिप्रेक्ष्य तथा परिस्थितियों के संदर्भ में समझने का प्रयास किया जाए। उसी मिलेजुले ज्ञान का उपयोग कर अलवर जिले में नदियों को जिन्दा किया गया है। तालाबों पर अनुपम मिश्र के लेखन में भी भारत के उसी परम्परागत जल विज्ञान की सौंधी गंध है। उल्लेखनीय है कि उसी परम्परागत

विज्ञान को अपनाकर हमारे पूर्वजों ने विपरीत मौसम, कठिन स्थानीय भूगोल तथा कम वर्षा के बावजूद अपने-अपने इलाके में पानी के कष्ट को पैर नहीं जमाने दिया था। सौभाग्य से हमारे पास आधुनिक तथा परम्परागत जल विज्ञान - दोनों ही उपलब्ध हैं। अर्थात बेहतर ज्ञान है, इस कारण जल स्रोतों की अस्मिता बहाली एवं उनके पुनरुद्धार में हम अधिक सक्षम हैं।

अस्मिता बहाली की बाट जोहते जल स्रोत

जल स्रोतों की अस्मिता की बहाली पर चर्चा करते समय आवश्यक है कि हम कुछ बुनियादी बातों को याद कर लें। उन बुनियादी बातों में मुख्य हैं हमारे गाँव या कस्बे के जल स्रोत। सामान्यतः हमारे गाँव या कस्बे के आसपास नदियाँ, तालाब, बाँध, स्टाप-डेम, परकोलेशन टैंक, कुए और नलकूप जैसे जल स्रोत मिलते हैं। पहले उनकी पुरानी हालत पर लोगों से कुछ बात कर लें। पुरानी बात करने से उनकी मूल स्थिति का पता चल जाता है। इसके बाद उनकी आज की स्थिति और उनकी मुख्य समस्याओं की चर्चा करें। सामान्यतः हर जगह लगभग एक जैसी हालत है। पहली समस्या है कि उनमें पानी की मात्रा लगातार कम हो रही है। नदी है तो उसका प्रवाह कम हो गया हैं। कहीं कहीं नदी आंशिक रूप से या पूरी तरह बरसाती नदी बन कर रह गई है। उसमें जगह जगह गंदगी जमा हो रही है। यदि तालाब है तो अनदेखी और उपेक्षा के कारण उसके कुछ हिस्से पर अतिक्रमण हो गया है। पानी की मात्रा और क्षेत्रफल घट गया है। जलकुम्भी से तालाब पट गया है। पानी से दुर्गन्ध उठ रही है। स्टाप-डेम की तली में गाद और गंदगी जमा हो गई है। गाद जमा होने के कारण जल क्षमता कम हो गई है। गन्दगी के कारण बीमारियों का खतरा बढ़ रहा है। भूजल के अविवेकी दोहन के कारण कुओं और नलकूपों का योगदान घट रहा है। वे सूख रहे हैं। इन समस्याओं से हम अच्छी तरह परिचित हैं। हमारे आसपास के जल स्रोतों में भी इसी प्रकार की समस्याएँ हैं। कहीं कहीं कुछ अलग तरह की भी समस्याएँ है।

तालाबों की अस्मिता बहाली के प्रथम चरण में समस्याओं को अच्छी तरह पहचानना चाहिए। कारणों की तह में जाना चाहिए। जलस्रोतों की अस्मिता बहाली के प्रथम चरण में समाज ये फैसले तो ले ही सकता है -

किसी भी जलस्रोत में गंदगी नहीं डालेंगे। अपने मित्रों तथा बच्चों को जागरूक करेंगे। स्कूलों में जागरूकता कार्यक्रम आयोजित कराएँगे। यदि कोई व्यक्ति नदी, तालाब इत्यादि में गंदगी डालता है तो उसे प्रेमपूर्वक टोकेंगे। लोगों को अपनी परम्पराओं का स्मरण कराएँगे। उल्लेखनीय है कि मनु स्मृति में जल स्रोतों के सम्बन्ध में कतिपय वर्जनाओं का उल्लेख है। कहा गया है -

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत्।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा।।

अर्थात पानी में मल, मूत्र, थूक अन्य दूषित पदार्थ रक्त या विष का विसर्जन न करें।

उपर्युक्त वर्जना पुराने जमाने की है। पुराने

जमाने अर्थात उद्योगीकरण के पहले, जल स्रोतों में एकत्रित होने वाली गंदगी मुख्यतः जैविक होती थी। जैविक (आर्गेनिक) गंदगी के सड़ने की गति बहुत तेज होती है इसलिए वह बहुत जल्दी समाप्त हो जाती थी। बची-खुची गंदगी को जलचर खा जाते थे। उद्योगीकरण और जीवनशैली बदलने के कारण अब गंदगी की किस्म बदल गई है।

आधुनिक युग की गंदगी तरह-तरह की है। उसके हजारों स्रोत हैं। पानी की गुणवत्ता मुख्यतः घरेलू कचरे, मानव मल, औद्योगिक अपशिष्ट और खेती में काम आने वाले कृषि रसायनों के कारण खराब होती है। खनन गतिविधियों के कारण भी पानी की गुणवत्ता बिगड़ती है। व्यक्तिगत स्तर पर हमारा फर्ज है हम जल स्रोतों में घरेलू गंदगी नहीं डालें। घरेलू गंदगी डालने वाले व्यक्तियों से बातचीत करें। उनको समझाएँ। उनका सहयोग हासिल करें। उनकी मदद से समस्या को हल कराएँ। यह बहुत छोटा प्रयास है। लोग कहते हैं कि बूँद-बूँद से घड़ा भरता है। इसलिए उनको वर्गीकृत करने के स्थान पर योगदान मानें। उन योगदानों को जीवनशैली का हिस्सा बनाएँ।

कई बार पेयजल स्रोतों (हैंडपम्प, कुआँ इत्यादि) के आसपास गंदा पानी जमा होता है। यह पानी जमीन में रिसकर जमीन के नीचे के पानी की गुणवत्ता खराब करता है। हमारा फर्ज है कि हम गंदा पानी जमा होने को रोकने के लिए जलस्रोत के मालिक और गंदा करने वालों से चर्चा करें। उन्हीं से गंदे पानी के निपटान के लिए व्यवस्था तय कराएँ। उनकी मदद से, प्रदूषण की समस्या हल कराएँ।

कुछ लोग सलाह देते हैं कि नगरीय इलाकों के छोटे-मोटे नदी-नालों के गंदे पानी को बिना उपचार या सामान्य उपचार के बाद सिंचाई करने के काम में लाया जा सकता है। यह बात आपसी चर्चा में भी उठ सकती है। हमें चाहिए कि सबसे पहले उस पानी का सूक्ष्म रासायनिक परीक्षण कराने पर जोर दें। सूक्ष्म रासायनिक परीक्षण के परिणामों को सार्वजनिक कराएँ। उसके हानि-लाभ तथा उपयुक्तता-अनुपयुक्तता की जानकारी प्राप्त करना चाहिए। जानकारी के आधार पर उपचारित पानी का उपयोग तय कराएँ। तय उपयोग के अनुसार पानी का उपयोग सुनिश्चित हो। उल्लेखनीय है कि नगरीय इलाकों के नदी-नालों के गंदे पानी में अनेक बार अत्यन्त हानिकारक भारी धातुओं के अंश पाए जाते हैं। वे जलचरों तथा मनुष्यों की सेहत के लिए बेहद हानिकारक होते हैं।

हमारी जानकारी में है कि जल प्रदूषण का एक बहुत बड़ा कारण बड़ी आवासीय बस्तियों से निकला मल-जल है। उसमें आर्गेनिक गंदगी के अलावा अनेक हानिकारक रसायन भी मौजूद होते हैं। मनुष्यों तथा जलचरों की सेहत पर उनका प्रभाव खतरनाक है। उसे साफ करना किसी एक व्यक्ति के बूते का काम नहीं है। उसे सौ प्रतिशत साफ करने के लिए नगरीय निकायों से लगातार बात करनी होगी। यही बात बड़े कल-कारखानों तथा उद्योगों से निकले पानी पर भी लागू है। एक बात और, कई बार कल-कारखानों तथा उद्योगों का प्रदूषित जल नदी या तालाब या जलस्रोत तक नहीं पहुँच पाता। मार्ग में ही रुक जाता है। वह जमीन में रिस कर भूजल को प्रदूषित करता है। यह प्रदूषित भूजल, नीचे-नीचे प्रवाहित हो कालान्तर में बड़ी नदी में मिल जाता है। नदी को प्रदूषित करता है। कुओं तथा नलकूपों के पानी को हानिकारक बनाता है। हमारा फर्ज है कि हम जल स्रोतों में गंदगी डालने वाले कल-कारखानों/उद्योगों के मालिकों से बातचीत करें। उनका सहयोग हासिल करें। उनकी मदद से, उनके द्वारा ही प्रदूषण की समस्या हल कराएँ। सफलता मिलेगी। सही बात का प्रतिकार या अनदेखी संभव नहीं होती।

सिंचित इलाकों में रासायनिक खाद, कीटनाशकों तथा खरपतवार नाशकों का खूब उपयोग होता है। उनके उपयोग के कारण इन

इलाकों के पानी, मिट्टी और अनाजों में हानिकारक रसायनों की उपस्थिति दर्ज होने लगी है। ग्रामीण स्तर पर होने वाली चर्चाओं में यह मुद्दा उठाया जाना चाहिए। उसके खतरों पर चर्चा होना चाहिए। कैंसर फैलने के प्रमुख कारणों में हानिकारक रसायनों की मदद से पैदा किए अनाज की बहुत बड़ी भूमिका है। कैंसर के अलावा ये रसायन और भी अनेक बीमारियों के लिए जिम्मेदार हैं। पंजाब का किसान इसे भोगने लगा है। रासायनिक खेती का संदेश बिलकुल साफ है - किसानों को पारम्परिक खेती की ओर लौटना होगा। देश के अनेक इलाकों में आधुनिक खेती से होने वाले नुकसान नजर आने लगे हैं। समाज की सेहत की कीमत पर उसे बढ़ावा नहीं दिया जा सकता।

प्राकृतिक स्रोतों में मिलने वाले पानी में बहुत कम मात्रा में बहुत से रसायन मिले रहते हैं। यह मात्रा पानी को स्वाद देती है। सामान्यतः वह हानिकारक भी नहीं होती। पानी में अकसर सोडियम, पोटेशियम, केल्शियम, मेग्निशियम, क्लोराइड, कार्बोनेट, बाईकार्बोनेट और सल्फेट पाए जाते हैं। इनके अलावा पानी में बहुत कम मात्रा में लोहा, मेगनीज, फ्लोराइड, नाईट्रेट, स्ट्रान्शियम, और बोरान भी मिलता है। इनके अलावा कुछ तत्व अत्यन्त ही कम मात्रा में पाए जाते हैं। उनके नाम हैं आर्सेनिक, सीसा, केडमियम और क्रोमियम। इनके अलावा पानी में सामान्य तौर पर आक्सीजन, कार्बन डाइ आक्साइड एवं नाइट्रोजन तथा कहीं कहीं मीथेन और हाईड्रोजन गैस भी मिलती है। खदानों के आसपास के पानी में कतिपय खनिजों के घुलनशील अंश मिलते हैं। जब किसी स्रोत के पानी में रसायनों की मात्रा, निरापद सीमा को लाँघ जाती है, तो वह पानी, प्रदूषित पानी कहलाता है। उस पानी के इस्तेमाल से अनेक बीमारियाँ पैदा होती हैं। इस मामले में फ्लोराइड और आर्सेनिक सबसे अधिक खतरनाक हैं। फ्लोराइड हड्डियों, दाँतों, माँसपेशियों और शरीर के अनेक भागों को प्रभावित करता है। उससे होने वाली बीमारियों का कोई इलाज नहीं है। इन बातों से समाज को अवगत कराना आवश्यक है। जानकारी के बाद ही सुरक्षात्मक कदम उठाए जाते हैं।

मध्यप्रदेश के रतलाम शहर में अल्कोहल का प्लांट लगा है। बरसों से इसके असर से आसपास के इलाकों के लोग पानी और हवा के प्रदूषण तथा दुर्गन्ध से त्रस्त हैं। रतलाम के प्लांट से निकले जहरीले पानी के कारण इलाके की खेती और जल स्रोत बरबाद हो गए हैं। इन्दौर की खान नदी, भोपाल के पातरा नाले और जबलपुर के ओमती नाले में इतनी गंदगी और खतरनाक रसायन हैं कि उस पानी का उपयोग खतरे से खाली नही है। खान नदी में इन्दौर का पूरा अपशिष्ट और कूड़ा कचरा मिलता है जिसके कारण लगभग पूरी नदी रोगाणुओं से पटी पड़ी है। देश सहित, मध्यप्रदेश में इस प्रकार के हजारों उदाहरण और हैं। इन नालों के पानी से अनेक लोग सब्जियाँ और खाद्यान्न उगाते हैं। उनमें हानिकारक रसायन पाए जाते हैं। समाज को इस विषय पर अपनी जिम्मेदारी निभानी चाहिए। जिम्मेदारी के अन्तर्गत पहला काम समझाइश, दूसरा काम उपचार के लिए संबंधितों से सतत अनुरोध और तीसरा काम प्रदूषित सब्जियों और खाद्यान्नों का बहिष्कार है। इन कदमों से नालों के प्रदूषित पानी के उपचार का मार्ग प्रशस्त होगा। उसके उपयोग की प्रवृत्ति पर रोक लगेगी। बीमारियों का खतरा कम होगा।

बैठकों में भूमिगत जल के प्रदूषण और उस पर आधारित स्रोतों (नदी, तालाब, कुएँ तथा नलकूप) में पानी की घटती मात्रा एवं उनके असमय सूखने की चर्चा होना चाहिए। भूजल का प्रदूषण अदृश्य होता है। प्रदूषण के दिखाई नहीं देने के कारण दूषित पानी उपयोग में आता रहता है। नुकसान पहुँचाता रहता है। इसी कारण वैज्ञानिकों ने भूजल के प्रदूषण को सबसे अधिक जटिल तथा घातक माना है। औद्योगिक क्षेत्र और

नगरीय क्षेत्रों के कचरे के आधे-अधूरे उपचार के कारण प्रदूषण का जन्म होता है। सीवर, सेप्टिक टैंकों और घरेलू नालियों से निकले गंदे पानी में अनेक धातुएँ, अधात्विक पदार्थ, आर्गेनिक पदार्थ, दुर्गन्ध पैदा करने वाले योगिक और रोग पैदा करने वाले जीवाणु पाए जाते हैं। नगरीय इलाकों का प्रदूषित भूजल बीमारियाँ फैलाने में अहम भूमिका निभाता है। उल्लेखनीय है कि प्रदूषण की मात्रा को कम करने में नदी-नालों का प्रवाह किसी हद तक सहायक होता है। इस बिन्दु पर सभी संबंधितों का ध्यान केन्द्रित करने तथा नदियों का प्रवाह बढ़ाने की मुहिम चलाने की आवश्यकता है। उल्लेखनीय है कि स्थानीय समाज को अपने आसपास की समस्याओं की सबसे बेहतर समझ होती है। इस कारण, उसे ठीक कराने में स्थानीय समाज की भागीदारी तथा उनका आगे आना आवश्यक है। गौरतलब है कि प्रजातांत्रिक परिवेश में, बहुत समय तक, समाज के सुझावों की अनदेखी संभव नहीं होती। इसलिए लोगों को एकजुट होना होगा। कृतसंकल्प समाज सुनामी की तरह होता है।

चर्चा नदियों की बिगड़ती सेहत और प्रवाह बढ़ाने की

यह चर्चा बहुत जरूरी है। प्राचीन काल में भले ही नदियाँ स्वच्छ जल का विश्वसनीय स्रोत रही हों पर आधुनिक युग में अनेक संकटों के दौर से गुजरने की राह पर हैं। उनके मुख्य संकट हैं पानी की घटती मात्रा (बरसात बाद के प्रवाह की कमी), पानी की कम होती निर्मलता (बिगड़ती गुणवत्ता) और बाढ़ का बढ़ता प्रकोप। सुझाव है कि नदी की सेहत की चर्चा अपने गाँव या कस्बे की नदी से शुरू की जाए।

लगभग हर नदी में बरसात के बाद के प्रवाह में कमी आ रही है। इसके अनेक कारण हैं। पहला मुख्य कारण है जमीन के नीचे पानी का दोहन। यह दोहन समाज की आवश्यकता है। उसे समाप्त नहीं किया जा सकता। लेकिन पानी की बरबादी को कम से कम करने के प्रयास अवश्य ही कराए जा सकते हैं। खेती में पानी की बरबादी को रोकने के लिए ड्रिप-इरीगेशन को अपनाने की मुहिम चलाई जा सकती है। बहुत अधिक पानी चाहने वाली फसलों में ड्रिप-इरीगेशन को कानूनन अनिवार्य कराया जा सकता है। गर्मी की फसलों को संकटग्रस्त इलाकों में हतोत्साहित किया जा सकता है। उद्योगों को पानी की रीसाइकिलिंग के लिए प्रेरित किया जा सकता है। बाँधों के कारण भी प्रवाह की निरन्तरता घट रही है। उस पर भी व्यवस्था को सचेत करने की आवश्यकता है।

नदी के गैर-मानसूनी प्रवाह को बढ़ाने के लिए नदी कछार की सीमा से प्रारंभ किए परकोलेशन तालाबों का जाल बिछाया जा सकता है। घरों में पानी के खर्च में कमी के प्रयासों को आगे बढ़ाने के लिए, समाज को विश्वास में लेकर, रेन-वाटर-हारवेस्टिंग तथा समझाइश की मुहिम चलाई जा सकती है। रेत के वैज्ञानिक खनन को व्यवहार में लाए जाने की जरूरत है।

नदी का भूगोल बदलना

नदियों के प्रवाह को बढ़ाने (या पानी की कमी को पूरा करने) तथा उनके पानी की शुद्धता को बहाल करने के लिए मुख्यतः तकनीकी मंचों पर चर्चा होती है। उसके बारे में समाज को मीडिया के माध्यम से अल्प जानकारी भी मिलती है। कभी कभी, कुछ सामाजिक संगठन भी नदी के प्रवाह तथा बढ़ती गंदगी के बारे में चिन्ता जाहिर करते हैं। सरकारी विज्ञप्तियों के माध्यम से कई बार आम आदमी को थोड़ी बहुत या सामान्य जानकारी मिलती है किन्तु समाज की अपेक्षाओं को मुखर होने तथा उसकी राय को मुख्यधारा में आने का अवसर शायद ही कभी मिलता है।

तकनीकी मंचों पर प्रवाह बढाने या पानी की कमी को पूरा करने तथा पानी की शुद्धता को बहाल करने के लिए अकसर नदियों के भूगोल को

बदलने की बात की जाती है। उसे सार्थक पहल बताया जाता है। उसकी पुरजोर पैरवी की जाती है। सार्थक पहल या पुरजोर पैरवी के बावजूद समाज शायद ही नदी के भूगोल बदलने के सभी पक्षों तथा नफा-नुकसान से पूरी तरह परिचित हो पाता है। कई बार, भूगोल बदलने का प्रस्ताव उसके लिए किसी रहस्य से कम नहीं होता। कालान्तर में, भूगोल बदलने के जब नफा-नुकसान सामने आने लगते हैं तो पुरानी कहानी समेट ली जाती है। नई शब्दावली के साथ उसे फिर परोस दिया जाता है। सुझाव है कि नदी के भूगोल बदलने, प्रवाह बढ़ाने और पानी की शुद्धता को बहाल करने के लिए उठाए जाने वाले संभावित प्रयासों के हर बिन्दु पर, पूरी पारदर्शिता के साथ समाज के बीच चर्चा हो। प्रयास निम्नानुसार हैं -

- नदियों का भूगोल बदलना।
- नदी मार्ग का भूगोल बदलना।

प्रयासों का संक्षिप्त विवरण तथा कुछ सुझाव/टिप्पणियाँ निम्नानुसार है -

नदियों का भूगोल बदलना

नदियों के भूगोल को बदलने के प्रयास को नदी जोड़ योजना कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत हिमालय क्षेत्र की 14 और दक्षिण भारत की 16 नदियों को जोड़ा जाएगा। पानी इकट्ठा करने के लिए 16 बाँध हिमालयीन इलाके में और 58 बाँध दक्षिण भारत में बनाए जाएँगे। जल परिवहन के लिए लगभग 14,900 किलोमीटर लम्बे 30 कृत्रिम जलमार्ग बनाए जाएँगे। परियोजना से लगभग 34,000 मेगावाट जल विद्युत का उत्पादन संभव होगा और लगभग 25 लाख हैक्टर रकबे में सूखे के असर को कम करने में मदद मिलेगी। यह योजना को मार्केट करने वाला पक्ष है। इसका दूसरा पक्ष बताता है कि योजना के कारण 6,25,000 हैक्टर जमीन नहरों में और 10,50,000 हैक्टर जमीन जलाशयों के डूब में आएगी। लगभग 79,292 हैक्टर इलाके के जंगल डूबेंगे। विस्थापन, पर्यावरण की हानि, गाद की समस्या, धरती का खारापन इत्यादि के कारण होने वाली हानि अलहदा है। नदी जोड़ परियोजना के 74 बाँधों के प्यासे कैचमेंटों में रहने वाले वंचित समाज की आजीविका और पेय जल संकट का निदान कैसे होगा? अनुत्तरित है। कैचमेंट में निवास करने वाले गरीबों की मूलभूत आवश्यकता के लिए पानी कहाँ से आएगा? पानी की उपलब्धता का भेदभाव कैसे दूर होगा?

सब जानते हैं कि बरसाती पानी की मदद से ही नदियों ने भारत के भूगोल को गढ़ा है। जलवायु तथा स्थानीय भूविज्ञान ने उसे सँवारा है। वह नदियों की करोड़ों सालों की मेहनत का परिणाम है। नदियों को जोड़ने का काम कुदरत और उसकी ताकतें करती हैं। वही ताकतें उनके मिलने तथा बिछड़ने के नियम तय करती हैं। उसे बदलने का अर्थ है कुदरत के साथ छेड़छाड़ करना तथा भारत के भूगोल को बदलना। नदी जोड़ परियोजना के बारे में अनुपम मिश्र का निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय है -

''अच्छे लोग जब राज के नजदीक पहुँचते हैं तो उनको विकास का रोग लग जाता है। भूमंडलीकरण का रोग लग जाता है। उनको लगता है कि सारी नदियों को जोड़ दें, सारे पहाड़ों को समतल कर दें - बुलडोजर चला कर उनमें खेती कर लेंगे। मात्र यही ख्याल प्रकृति के विरुद्ध है। मैं बारबार कह रहा हूँ कि यह प्रभु का काम है, सुरेश प्रभु सहित देश के प्रभु बनने के चक्कर में इसे नेता लोग न करें तो अच्छा है''।

अनुपम मिश्र आगे कहते हैं ''जिनका दिल देश के लिए धड़कता है उन्हें नदी जोड़ परियोजना पर प्रेम पूर्वक बात करनी चाहिए। जरूर कहीं कोई-न-कोई सुनेगा। यह दौर बहुत विचित्र है और इस दौर में सब विचारधाराएँ और हर तरह का राजनीतिक नेतृत्व सर्वसम्मति रखता है सिर्फ विनाश के लिए, उन सब में रजामंदी है, विनाश के लिए। और किसी चीज में एक दो वोट से सरकार

गिर सकती है, पलट सकती है, बन सकती है, बिगड़ सकती है। लेकिन इस विकास और विनाश वाले मामले में सबकी गजब की सर्वसम्मति है''।

नदी विज्ञान तथा पर्यावरण से जुड़े लोगों का मानना है कि बहती नदी का पानी मौसम, हवा, रोशनी, धरती, जीव जन्तुओं और अनेक घटकों के सम्पर्क में आने और प्रकृति द्वारा उसे सौंपे दायित्वों को पूरा करने के कारण, पाइप या सुरंग से बहने वाले पानी से बहुत अलग है। नदी प्रबन्ध का अर्थ केवल जल प्रबन्ध नहीं होता। वह हकीकत में ईको-सिस्टम का कुशल प्रबन्ध होता है। वही जल प्रबन्ध निरापद होता है। वही समाज की सेवा करता है।

नदी जोड़ परियोजना की अवधारणा का मूल आधार नदी घाटियों में बहता पानी है। यह अमीरी और गरीबी, बाढ़ के पानी की मात्रा पर आधारित है। इस सवाल का उत्तर पानी की प्रति व्यक्ति उपलब्धता के आधार पर दिया जाना चाहिए। उसका उत्तर नदी घाटी में पानी की मूलभूत आवश्यकता के आधार पर दिया जाना चाहिए। उसका उत्तर पानी की निरापदता के आधार पर दिया जाना चाहिए। उसका उत्तर नदी घाटी की कुदरती जिम्मेदारियों के आधार पर दिया जाना चाहिए। इसका उत्तर इको-सिस्टम की निरन्तरता को ध्यान में रखकर दिया जाना चाहिए। उसका उत्तर सामान्य अंकगणितीय जलविज्ञान अर्थात बाढ़ की मात्रा के आधार पर नहीं दिया जा सकता। वह सामाजिक सरोकारों की अनदेखी होगी।

कुछ लोगों को लगता है कि नदी घाटियों की पानी की गरीबी, हकीकत में लालच, पानी के कुप्रबन्ध और गैर टिकाऊ माँग का परिणाम है। इस आधार पर नदियों के भूगोल को बदलने की आवश्यकता ही नहीं है। यदि भूगोल बदला भी गया तो भी लालच और कुप्रबन्ध के कारण पानी की माँग कभी भी खत्म नहीं होगी। आवश्यकता है घाटी के अन्दर ही टिकाऊ, विवेकी, लालचरहित, आर्थिक दृष्टि से उचित एवं सावधानीपूर्वक किए जलप्रबन्ध को सबसे पहले आजमाने की। इस प्रयास के बाद हो सकता है कि इतर नदी घाटी के पानी के ट्रांसफर का प्रश्न बेमानी हो जाए। समाज को मिल-बैठकर इन बिन्दुओं पर गंभीर चिन्तन करना चाहिए।

पिछले 20-25 सालों से भारत में विकास कार्यों में जन भागीदारी और समाज को अधिकार देने की बात चल रही है। अनेक इलाकों में इसे आजमाया भी गया है। अनेक जगह सकारात्मक परिणाम भी मिले हैं। सकारात्मक परिणामों के कारण, समाज को व्यवस्थाओं के केन्द्र में रखने के फायदों पर सहमति बन रही है। यह सहमति भारत तक सीमित नहीं है। दुनिया के अनेक देशों में इस प्रयोग को आजमाया जा रहा है। सारी दुनिया में जन भागीदारी के दायरे को बढ़ाने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इसलिए कैचमेंट और कमाण्ड के लोगों की भागीदारी आवश्यक है। उन्हें अपने भाग्य का फैसला करने तथा अपने बुनियादी सरोकारों को सुलझाने के लिए संवाद का मार्ग अख्तियार करना होगा। संक्षेप में नदी के भूगोल से जुड़ी समस्याओं पर चर्चा करते समय उपर्युक्त बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए। यह बहुत जरूरी है।

नदी मार्ग का भूगोल बदलना

नदी मार्ग के भूगोल को बदलना बहुत छोटा काम माना जाता है इसलिए स्थानीय स्तर पर इसे करने के लिए लोग या संस्थाएँ अमूनन आसानी से तैयार हो जाती हैं। यह काम नदी में पानी की आवक बढ़ाने, सूखी नदी को जिन्दा करने, बाढ़ के प्रभाव को घटाने जैसे कामों के लिए किया जाता है। इसके लिए नदी तल की खुदाई की जाती है, उसके पाट को चौड़ा या संकरा किया जाता है या मार्ग की दिशा बदली जाती है। सुझाव है कि इन कामों के प्रभाव तथा उसके असर के स्थायित्व को समझा जाए।

बहुत से लोग नदी में पानी की आवक बढ़ाने के लिए नदी तल को गहरा करने को सार्थक पहल मानते हैं। इस क्रम में अनेक जगह नदी के तल की मिट्टी और रेत को श्रमदान या अन्य व्यवस्था से हटाया जाता है। नदी तल की रेत, मिट्टी इत्यादि को हटाने से तात्कालिक रूप से नदी में पानी (भूजल) दिखाई देने लगता है। इस सफलता से सब लोग प्रभावित होते हैं। काम के पक्ष में माहौल बनता है। विदित हो, कुदरत ने नदीतल के प्रत्येक बिन्दु की ऊँचाई को अपने कायदे कानूनों के अनुसार निर्धारित किया है। उसे करने से कुदरती सिद्धान्तों की अनदेखी होती है। यह काम अस्थायी प्रकृति का होता है। इस कारण, कुछ साल बाद नदी के तल में मिट्टी जमा हो जाती है। सारे किए धरे पर पानी फिर जाता है। खर्च बेकार हो जाता है। इस गैर-टिकाऊ तरीके से नदी जिन्दा नहीं होती और पानी की आवक भी नहीं बढ़ती। कुछ लोग बाढ़ की सुरक्षित निकासी के लिए नदी के पाट को चौड़ा करने का सुझाव देते हैं। ऐसा करने से बाढ़ के पानी की निकासी के लिए अधिक मार्ग मिल जाता है। बाढ़ का अतिरिक्त पानी आसानी से निकल जाता है पर पाट के चौड़े होने के कारण प्रवाह की गति कम हो जाती है। गति कम होने के कारण गाद जमा होने लगती है। गाद जमा होने के कारण नदी तल उथला हो जाता है। बाढ़ का प्रभाव क्षेत्र बढ़ जाता है। किया धरा और खर्च बेकार हो जाता है।

कहीं कहीं लोग विभिन्न आवश्यकताओं का हवाला देकर नदी तट को सँकरा या परिवर्तित करने का सुझाव देते हैं। कुछ लोग तटबन्ध बनाने का सुझाव देते हैं। इन कामों को करने से नदी की कुदरती जिम्मेदारी प्रभावित होती है। कुदरत उस बदलाव का प्रतिकार करती है। वह प्रतिकार कालान्तर में नदी मार्ग की पुरानी स्थिति को लौटा देता है। किया धरा प्रयास और खर्च बेकार हो जाता है। संक्षेप में नदी मार्ग की समस्याओं पर चर्चा करते समय उपर्युक्त बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए। बदलाव के स्थायित्व तथा नकारात्मक पक्षों पर समझदार और अनुभवी लोगों के विचार जानकर ही निर्णय लेना चाहिए।

विभिन्न कारणों से नदियों के पानी की निर्मलता पर खतरा गंभीर हो रहा है। मुख्य कारण हैं खेती में प्रयुक्त कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों, रासायनिक उर्वरकों, अनुपचारित नगरीय तथा औद्योगिक अपशिष्ट। नदियों की निर्मलता को लौटाने के लिए तीन मुख्य प्रयास आवश्यक हैं -

- अनुपचारित नगरीय तथा औद्योगिक अपशिष्ट इत्यादि का सौ फीसदी उपचार। उपचार के बाद ही पानी को मुख्य नदी में छोड़ना। एस.टी.पी. से नाले की गंदगी साफ होती है। मुख्य नदी की नहीं।
- परम्परागत खेती अपनाना।
- भूजल को प्रदूषित करने वाली गतिविधियों पर रोक।

नदियों में जीवनरक्षक प्राकृतिक जलप्रवाह को सुनिश्चित किए बिना उनके पानी की गुणवत्ता बहाल करना लगभग असंभव है। अतः प्रत्येक नदी की घाटी का विकास उसके भूजल स्तर एवं ऐसी कृषि पद्धति को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए जो प्रदूषण से मुक्ति दिलाती है। नदी के पानी को साफ करने वाले तत्वों को बढ़ावा देती है। अर्थात नदियों के गैर-मानसूनी प्रवाह को बढ़ाने की आवश्यकता है। यह बेहद महत्वपूर्ण कार्य है।

भूजल स्तर की बहाली से न्यूनतम पर्यावरणी प्रवाह उपलब्ध होगा। उसके उपलब्ध होने के कारण नदी की बायोडायवर्सिटी सुधरेगी। बायोडायवर्सिटी के सुधरने से जलीय जीवन की वापसी होगी। नदी की पानी को खुद-ब-खुद साफ करने वाली क्षमता लौटेगी। नदी की प्राकृतिक जिम्मेदारियाँ पूरी होंगी। प्रवाह बढ़ने से नदियों के अविरल होने की परिस्थितियाँ निर्मित होगी।

अब बात भूजल स्तर की बहाली की। नदियों के प्रवाह की बहाली का अर्थ है पाताल छूते भूजल

स्तर की बहाली। उसका सतह के करीब तक ऊपर उठ आना। भूजल स्तर के ऊपर उठ आने से कुएँ और नलकूप, बिना प्रयास तथा धन खर्च किए, अपने आप जिन्दा हो जाएँगे। उनकी जल क्षमता बहाल हो जाएगी। जल संकट खत्म हो जाएगा। इसके अतिरिक्त कुछ अप्रत्यक्ष लाभ हैं जिनका फायदा समाज और सरकार, दोनों को मिलेगा। इस बिन्दु पर समाज को ध्यान देना होगा। उसे मुख्यधारा में लाना होगा।

ऊपर वर्णित अनेक कामों में समाज का सीधा दखल नहीं है। पर अपेक्षित मुद्दों पर ध्यान आकर्षित करना और सामाजिक दबाव बनाना हमारे हाथ में है। अपेक्षित मुद्दों के कुछ उदाहरण निम्नानुसार हैं -

- नदियों की मुख्य धारा से पानी उठाने में संयम बरता जाए।
- प्रवाह बहाली के लिए समानुपातिक भूजल रीचार्ज किया जाए।
- पर्यावरणी प्रवाह सुनिश्चित किया जाए।
- नदी से रेत निकासी के लिए तकनीकी मानक तय किए जाएँ।

ये कुछ बिन्दु हैं जिन पर खुलकर बहस होनी चाहिए। यह हमारा नागरिक दायित्व तथा सामाजिक सरोकार है। जनप्रतिनिधियों और अधिकारियों से सटीक एवं तार्किक बात करना हमारे हाथ में है। वह हमारी ताकत भी है। अपना पक्ष सही तरीके से रखना हमारे हित में है। समाधानों का तार्किक एवं वैज्ञानिक रोडमेप पेश करना हमारे हाथ में है। समाज द्वारा लिए फैसलों से अपने प्रतिनिधि को अवगत कराना हमारे हाथ में है। जटिल मामलों में यही समाज का सकारात्मक योगदान है।

नदियों के किनारे मेले तथा महोत्सव मनाने की पुरानी भारतीय परम्परा है। इस परम्परा के अनुसार, समाज नदी के किनारे एकत्रित होता है। मेला लगता है, सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता है तथा समाज का अवचेतन मन, नदी के प्रति अपनी भक्ति, श्रद्धा तथा आस्था प्रकट कर घर लौट आता है। इस अनुक्रम में कहा जा सकता है कि यदि समाज को अपने भाव, अपनी अपेक्षाएँ प्रगट करने का अवसर मिलता तो बात यों कही जाती -

- हमारी नदियाँ बारहमासी रहें। उनमें पानी की कभी कमी नहीं आए। वे जलचरों तथा नभचरों सहित सब जीवधारियों की जरूरतों को पूरा करें।
- आजीविका के लिए पानी पर निर्भर समाज को पानी की कमी के कारण कभी निराश नहीं होना पड़े। पानी गाद मुक्त हो।
- पानी जीवन का आधार है। आयुर्वेद में उसे अमृत कहा है। इसलिए वह हमेशा अमृततुल्य तथा जीवनदायनी ऊर्जा से ओतप्रोत रहे।
- समाज की आकांक्षाओं को सरकार नीतिगत एवं संवैधानिक सम्बल दे।

चर्चा बाँधों की लम्बी आयु तथा पानी के बँटवारे की

नदियों के पानी के बँटवारे से जुड़े अनेक मामले हैं। हमें उनकी जानकारी भी है पर एक ऐसा अनछुआ क्षेत्र है जिसकी कभी चर्चा नहीं होती। प्रभावित तबका है, जिसके हितों पर कोई बात भी नहीं करता। यह मामला है बाँध में जमा पानी के कैचमेंट और कमाण्ड के बीच बँटवारे का। समाज को इसकी अनदेखी नहीं करना चाहिए।

समाज को बाँधों के उन मुद्दों पर चर्चा करनी चाहिए जो अनदेखी के शिकार हैं। पहला मुद्दा है गाद निपटान। बाँधों की डिजायन की खामी या अन्य कारणों से गाद का ठीक से निपटान नहीं होता। वह जलाशयों के पेंदे में जमा होती रहती है। हर साल स्टोरेज घटाती है। यदि कारगर कदम नहीं उठाए गए तो गाद भरने से एक दिन बाँध अनुपयोगी हो जाएगा। इसलिए बाँधों से गाद निकासी की व्यवस्था को मुकम्मल करना चाहिए।

उम्मीद है, समाज की पहल से इस अनदेखी पर रोक लगेगी।

दूसरा मुद्दा है जलाशय में जमा पानी का न्यायोचित बँटवारा। सब जानते हैं कि बाँधों में जमा पानी का स्रोत कैचमेंट होता है, पर उसे केवल कमाण्ड में ही उपलब्ध कराया जाता है। पानी की इस वितरण व्यवस्था के कारण कैचमेंट को बाँधों से पानी नहीं मिल पाता। कैचमेंट का इलाका जल कष्ट भोगता है। यह महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दा है। इस पर गंभीर चर्चा होनी चाहिए और समस्या का सामाजिक न्याय आधारित हल खोजा जाना चाहिए। अर्थात बाँधों में जमा पानी को न्यायोचित तरीके से कैचमेंट तथा कमाण्ड में वितरित करना चाहिए। समाधान खोजा जाना चाहिए। स्थानीय स्तर पर और भी मुद्दे हो सकते हैं। उनको सुलझाना भी हमारा सामाजिक दायित्व है।

तालाब

हर गाँव के आसपास तालाब मौजूद हैं। विलुप्त तालाब भी समाज की स्मृति में जीवित हैं। उनके नाम गाँव, मोहल्लों के नामों तथा उपनामों में रचे-बसे हैं। आज भी भारत में सैकड़ों साल पुराने अनेक तालाब मौजूद हैं। अनुपम मिश्र की किताब 'आज भी खरे हैं तालाब' तथा सेन्टर फार साइंस एण्ड एन्वायरोन्मेंट, नई दिल्ली की किताब 'बूँदों की संस्कृति' में देश के विभिन्न भागों में मौजूद परम्परागत तालाबों का विवरण उपलब्ध है।

हमारे आसपास मौजूद तालाबों की दो श्रेणियाँ अस्तित्व में हैं। परम्परागत और आधुनिक तालाब। उनके अन्तर को समझने का मतलब है, समस्याओं को बेहतर तरीके से स्थायी तौर पर सुलझाना।

परम्परागत तालाब - प्रकृति से तालमेल के प्रतीक

पुराने तालाब सामान्यतः बारहमासी होते थे। उनके कैचमेंट हरे-भरे होते थे। कैचमेंट में मिट्टी का कटाव बहुत कम था। परिणामस्वरूप गाद जमाव बहुत कम था। गाद जमाव कम होने के कारण उनकी आयु सैकड़ों हजारों साल होती थी। उनका स्रोत बारहमासी होता था। इसलिए उनका पानी प्रदूषण मुक्त और निर्मल होता था। पुराने समय में उनका निर्माण, प्रकृति से तालमेल बिठाते जल विज्ञान के आधार पर किया जाता था। उनमें सामान्यतः कम पानी रोका जाता था। उन्हें ढालू जमीन और छोटे-छोटे नदी नालों पर पाल डालकर बनाया जाता था। सदियों से परम्परागत तालाब, बरसाती पानी को जमा करने वाला, सबसे सस्ता और सबसे अधिक विश्वसनीय देशज स्रोत रहा है। वह ग्रामीण बसाहटों का अनिवार्य हिस्सा था। राजा-महाराजाओं द्वारा बनवाए तालाब बड़े और ग्रामीणों द्वारा बनवाए तालाब छोटे होते थे। प्रायः हर गाँव में एक या एक से अधिक तालाब होते थे। उनका निर्माण, प्रकृति से तालमेल बिठाते भारतीय जल विज्ञान के आधार पर किया जाता था। कम पानी रोका जाता था। थोड़ी सी कोशिश से कैचमेंट से आने वाले और तालाब में रोके जाने वाले पानी के सम्बन्ध को समझा जा सकता है। यही सम्बन्ध गाद के जमाव को नियंत्रित करता है।

आधुनिक तालाब - पश्चिमी विज्ञान के उदाहरण

आधुनिक काल में तालाबों का निर्माण पश्चिमी जल विज्ञान द्वारा तय मापदण्डों के अनुसार किया जाता है। इन मापदण्डों में सबसे पहले कैचमेंट से आने वाले पानी की संभावित

मात्रा ज्ञात की जाती है। जलाशय बनाने के लिए उपयुक्त जमीन और पाल डालने के लिए उपयुक्त स्थान खोजा जाता है। उन्हें सामान्यतः राजस्व की भूमि पर बनाया जाता है। अधिकांश तालाब, गर्मी का मौसम आते आते सूख जाते हैं या उनमें बहुत कम पानी बचता है। यह स्थिति समाज के संज्ञान में है।

आधुनिक तालाबों के कैचमेंट में बहुत कम जंगल बचे हैं। कैचमेंट में खेती होने लगी है। गाँव बस गए हैं। मिट्टी का कटाव बहुत बढ़ गया है। परिणामस्वरूप तालाबों में बहुत अधिक गाद जमा होने लगी है। गाद जमाव के कारण वे अल्पायु हो रहे हैं। बसाहटों की गंदगी और जलकुम्भी ने उनकी सूरत और सीरत बदल दी है।

आधुनिक तालाबों का स्रोत सामान्यतः बरसाती पानी होता है। विभिन्न कारणों से उनका पानी बहुत जल्दी प्रदूषित हो जाता है। उनमें सामान्यतः जलकुम्भी का विस्तार भी देखा जाता है। उन्हें बनाते समय उनमें सामान्यतः अधिक से अधिक पानी रोकने का प्रयास किया जाता है। उन्हें ढालू जमीन पर पाल डालकर बनाया जाता है। अनेक कारणों से, आधुनिक युग में, तालाब, बरसाती पानी को जमा करने वाला, सबसे अधिक विश्वसनीय स्रोत नहीं हैं। स्टाप-डेम उनकी जगह ले चुके हैं।

कोशिश तालाबों को समझने की

तालाबों के पुनरुद्धार पर चर्चा करते समय आवश्यक है कि हम सबसे पहले उसकी श्रेणी (परम्परागत/आधुनिक) को जान लें। यह जानकारी उसके निर्माण के जल विज्ञान को समझने के लिए बेहद जरूरी है। इसके बाद उसकी पुरानी हालत जो वरिष्ठ जनों की स्मृति में है, से लोगों को परिचित करा दें। पुरानी बात करने से उसकी मूल स्थिति तथा इतिहास का पता चल जाता है। मूल स्थिति से परिचित कराने से उसकी समस्या समझ में आ जाती है। इसके बाद उसकी मौजूदा स्थिति, मुख्य समस्याओं एवं पुनरुद्धार की चर्चा करें।

आमतौर पर परम्परागत और आधुनिक तालाबों के बिगाड़ के कारण लगभग एक जैसे हैं। आमतौर पर उनकी मुख्य समस्या है - गाद भराव, कल-कारखानों और बसाहटों इत्यादि के अनुपचारित पानी का उनमें छोड़ा जाना, गंदगी तथा गंदे पानी की निकासी की पुख्ता व्यवस्था का अभाव, अतिक्रमण, संकटग्रस्त बायोडायवर्सिटी, घटती सेवा, जलकुम्भी का विस्तार और कैचमेंट का घटता योगदान इत्यादि। इनके अलावा कुछ स्थानीय समस्याएँ भी हो सकती है। एक बात जो उनके पुनरुद्धार में बहुत महत्वपूर्ण है, वह है उनके निर्माण में प्रयुक्त विज्ञान। बेहतर परिणाम प्राप्त करने के लिए तालाब निर्माण के विज्ञान को ध्यान में रखकर ही समाज को रणनीति तय करना चाहिए।

तालाबों का पुनरुद्धार : समाधान मिलें तो बात बने

समाज को सबसे पहले परम्परागत और आधुनिक तालाबों की समस्याओं की पहचान करना चाहिए। तदुपरान्त उन समस्याओं को वर्गीकृत करना चाहिए। इसके बाद, प्रत्येक समस्या को हल करने के लिए विकल्पों पर विचार-विमर्श होना चाहिए। विचार-विमर्श के उपरान्त सबसे अधिक कारगर विकल्प पर सर्वसम्मति से निर्णय लिया जाना चाहिए। कुछ सुझाव निम्नानुसार हो सकते हैं -

तालाबों में गाद भराव की समस्या बेहद आम है। यह बात अनेक लोगों की जानकारी में है। यह गाद कैचमेंट से बाढ़ के पानी के साथ आती है। तालाब से पानी की अपर्याप्त निकासी के कारण उसका बहुत बड़ा हिस्सा तालाब की तली में जमा हो जाता है। उसे मशीनों की मदद से निकाला जा सकता है पर इस में काफी धन खर्च होता है। यह अस्थायी तरीका है। कुछ सालों में गाद फिर जमा

हो जाती है।

प्राचीन काल में परम्परागत तालाबों में गाद जमाव कम से कम रखने के लिए प्राकृतिक तरीका अपनाया जाता था। इसके लिए कैचमेंट से आने वाले पानी की कम मात्रा तालाब में जमा की जाती थी। बहुत से पानी को बाहर निकल जाने दिया जाता था। बाहर जाता पानी अपने साथ गाद और गंदगी बहा ले जाता था। तालाब निर्मल रहता था। यह तरीका उन तालाबों पर क्रियान्वित किया गया था जो नदी मार्ग पर बने थे।

कुछ तालाब नदियों के पास भी स्थित होते हैं। कई बार, उन तालाबों में बसाहटों तथा कल-कारखानों की गंदगी जमा होती है। उस गंदगी को साफ करने के लिए नदी के पानी का उपयोग किया जा सकता है। एक विकल्प यह है कि नदी से पानी की धारा निकाल कर तालाब की ओर मोड़ दी जाए। दूसरा विकल्प गुरुत्व बल की मदद से पाइपों द्वारा तालाब में पानी पहुँचाया जाए। दोनों ही स्थिति में तालाब की गंदगी तथा गाद की कुछ मात्रा वेस्टवियर के मार्फत बाहर निकलेगी। यदि कुछ कमी समझ में आती है तो पानी की मात्रा बढ़ाकर परिणामों को बेहतर बनाया जा सकता है। तालाब से बाहर जाती गंदगी को उपचारित किया जाना चाहिए। उपचार के बाद ही उपचारित अर्थात शुद्ध पानी को नदी को लौटाया जाना चाहिए। इस तरीके को अपनाने से तालाब काफी हद तक शुद्ध हो जाएगा। नदी को अपना पानी वापस मिल जाएगा। नदियों के पास स्थित तालाबों की गाद और गंदगी के निपटान का यह कुदरती, स्थायी तथा किफायती तरीका है।

अनेक अवसरों पर समाज को पुराने तालाबों की सुध लेने का अवसर मिलता है। इस मौके पर सबसे पहले उनके निर्माण में प्रयुक्त जल विज्ञान को समझना आवश्यक है। उससे दूसरों को अवगत कराने की भी आवश्यकता है। बेहतर समझ, समस्या पर सार्थक बहस और सही फैसले लेने का अवसर प्रदान करती है।

उल्लेखनीय है कि उनके निर्माण में प्रयुक्त परम्परागत जल विज्ञान के कारण ही वे लगभग गाद मुक्त थे। इसी कारण वे दीर्घायु थे। सुझाव है कि जीर्णोद्धार करते समय उनके वेस्टवियर की ऊँचाई को यथावत रखा जाए। उसमें बिलकुल भी वृद्धि नहीं की जाए। अधिक पानी भरने के लोभ से बचा जाए। यदि लोभ किया गया और उनके वेस्टवियर की ऊँचाई बढ़ाई गई तो उनमें गाद जमा होने लगेगी। कुछ साल बाद वे तालाब, कूड़ादान में बदल जाएँगे। वे जलकुम्भी तथा गंदगी से पट जाएँगे। परम्परागत जल विज्ञान का सीधा और स्पष्ट सन्देश है - भारतीय/परम्परागत जल विज्ञान को यथावत रखें। उसे यथावत रखकर प्राचीन तालाबों की अस्मिता लौटाने की जिम्मेदारी निभाएँ।

आधुनिक तालाबों में गाद जमाव को कम करने वाले कुदरती तरीका बेहतर होता है। यह प्रयास उन्हें दीर्घायु बनाने में सहयोग करेगा। मशीनों से भी गाद निकाली जा सकती है पर इस तरीके में स्थायी परिणाम नहीं मिलते। खर्च भी बहुत होता है। एक बात और, यदि स्थानीय किसान गाद लेना चाहें तो, सबसे पहले गाद का सूक्ष्म रासायनिक परीक्षण कराएँ। सही गुणवत्ता पाए जाने पर ही उसका उपयोग हो।

तालाबों को गहरा करना - फैशन या आवश्यकता

पिछले कुछ सालों से तालाबों को गहरा करने का प्रचलन जोर पकड़ रहा है। यह काम देश के अनेक भागों में किया जाने लगा है। सूखा राहत तथा पानी की सप्लाई से जुड़े तकनीकी लोग भी इसके पक्षधर होते जा रहे हैं। यह सारी जद्दोजहद तालाबों की जल क्षमता बढ़ाने और आने वाले सालों में जल संकट की संभावना को खत्म करने के लिए की जाती है। इस तरह के काम को समाज का हित माना जाता है इसलिए उस पर सवाल नहीं उठाए जाते। उल्लेखनीय है कि बहुसंख्य समाज

को इस जद्दोजहद में अपनी समस्या का हल नजर आता है।

तालाब गहरीकरण के काम का तकनीकी पक्ष है इसलिए उसे गहरा करने के पहले यह जानना आवश्यक है कि जलग्रहण क्षेत्र से लगभग कितना पानी हासिल किया जा सकता है और तालाब में अधिक से अधिक कितना पानी जमा किया जा सकता है। इसी सम्बन्ध के आधार पर तालाब के गहरीकरण के प्रस्ताव को मंजूर किया जाना चाहिए। यदि पिछले कुछ सालों से पूरी बरसात के बावजूद वह तालाब भरपूर पानी को तरस रहा हो तो उस हकीकत का अर्थ है कि कैचमेंट से तालाब को पूरा भरने लायक पानी नहीं मिल रहा है। तालाब गहरा करते समय इस बिन्दु पर चर्चा होनी चाहिए।

तालाबों को गहरा करते समय या उन्हें बनाते समय उनकी न्यूनतम गहराई पर बहस होना चाहिए। यह बहस तालाब को बारहमासी बनाने के लिए आवश्यक है। गहराई पर निर्णय लेते समय वाष्पीकरण हानि को ध्यान में रखना आवश्यक है। उथले तालाब जल्दी सूख जाते हैं। समाज का दायित्व है कि वह स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही तालाब की गहराई के बारे में निर्णय ले। निर्णय लेने में सहयोग करे।

तालाबों को गहरा करने तथा पुरानी जल संरचनाओं के जीर्णोद्धार की चर्चा में पानी की गुणवत्ता का प्रश्न अकसर गुम जाता है। क्योंकि जहाँ लोग पानी के लिए तरस रहे हों वहाँ फर्टीलाइजर, इंसेक्टीसाइड और पेस्टीसाइड के कारण पानी की बिगड़ती गुणवत्ता की बात करना, नक्कारखाने में तूती बजाने जैसा लगता है। यह अनदेखी अनुचित है। उसकी चर्चा आवश्यक है।

हमारे आसपास के अनेक तालाबों की जमीन पर अतिक्रमण हुआ है। हमारी सामाजिक जिम्मेदारी है कि उन्हें अतिक्रमण मुक्त रखे जाने की मुहिम का हिस्सा बनें। यदि संभव हो तो उनकी अतिक्रमित भूमि की वापसी की कोशिश करें। तालाबों के मामलों में जागरूकता और सामाजिक सहयोग के अलावा पब्लिक आडिट व्यवस्था लागू होना चाहिए। पब्लिक आडिट के कारण व्यवस्था चौकन्नी रहती है। अतिक्रमण का खतरा यथासंभव कम रहता है।

कुछ बातें जिन्हें भूलना महँगा पड़ेगा

पिछली सदी तक भारत के विभिन्न कृषि-जलवायु क्षेत्रों में लाखों तालाब थे। खेतों पर किसानों का भले ही स्वामित्व था पर चारागाह, जंगल, बाग-बगीचों एवं तालाबों को खेती का पूरक मानने के कारण उन (तालाबों) पर समाज का स्वामित्व था। तालाब और उनका कैचमेंट पवित्र माना जाता था। उसे अपवित्र नहीं किया जाता था। यह उस विलक्षण पर्यावरणी समझ का प्रमाण है जो भारत में सदियों पहले विकसित हुई और लोकसंस्कारों के माध्यम से कालजयी बनी। उसने जल संकट पनपने नहीं दिया। उसने नदियों, कुओं और बावड़ियों को सूखने नहीं दिया। पानी को निर्मल रखा। आज परिस्थितियाँ बदल गईं हैं। हम अतीत में नहीं लौट सकते। उन चीजों को वरीयता दिला सकते हैं जो तालाबों और उस पर निर्भर समाज के हित में हैं।

तालाब, विकेन्द्रीकृत जल प्रबन्ध के प्रतीक हैं। उनके निर्माण से प्राकृतिक जलचक्र मजबूत होता है। भूजल स्तर ऊपर उठता है। नलकूपों, कुओं में पानी लौटता है। नदियाँ जिन्दा होती हैं। उनकी मदद से हर बसाहट में जल स्वराज अर्थात आत्मनिर्भरता को लाया जा सकता है। इसलिए समाज को एकजुट हो तालाबों के निर्माण को सर्वोच्च वरीयता दिलाने के लिए प्रयास करना चाहिए। हर बसाहट में पर्याप्त जल संरक्षण कराया जाना चाहिए। पानी की मात्रा की पर्याप्तता का अनुमान लगाने के लिए संरक्षित पानी और ग्राम के रकबे के सम्बन्ध को ज्ञात किया जाना चाहिए। यह मान जितना अधिक होगा, उस बसाहट में जल कष्ट उतना कम होगा।

वन और जैव विविधता

समाज को वनों और उनकी जैवविविधता की चिन्ता करनी चाहिए। इसके बिना समाज का प्रकृति एजेण्डा अधूरा है। यदि हम अतीत में देखें तो पता चलता है कि आज से लगभग 4000 साल पहले से वनों की रक्षा के उल्लेख मिलने लगते हैं। गौतम बुद्ध ने अपने उपदेशों में कहा था कि हर व्यक्ति को हर पाँच साल में एक वृक्ष लगाना चाहिए। सम्राट अशोक ने वनों, वन्य जीवों के संरक्षण और उनकी सुरक्षा के बारे में आदेश दिए थे। भारतीय संस्कृति में मानव, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, जल जीव, पेड़-पौधे-लताएँ, नदी-तालाब-झरने, मिट्टी-पहाड़ इन सबका परस्पर-निर्भर संबंध खोजा गया था। उस पर शोध किया गया और प्रामाणिकता के साथ अच्छी अच्छी बातों को आचरण में ढाला गया है। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है -

दशकूपसमा वापी, दशवापीसमो ह्रदः।
दशह्रदसमः पुत्रो, दशपुत्रसमो द्रुमः।।

मत्स्यपुराण में ऋषि मनीषा कहती है - एक बावड़ी दस कुओं के बराबर होती है। एक तालाब दस बावड़ियों के बराबर होता है। एक पुत्र दस तालाबों के बराबर होता है। एक वृक्ष दस पुत्रों के बराबर होता है। यह उल्लेख वृक्षों की महत्ता और उपयोगिता को प्रतिपादित करता है।

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में कहा गया है - हे धरती माँ! जो कुछ मैं तुझसे लूँगा वह उतना ही होगा जिसे तू पुनः पैदा कर सके। तेरी जीवनी शक्ति पर कभी आघात नहीं करूँगा। हे माता! एक पार्थिव गंध हम सबको एक सूत्र में बाँधे हुए है। यह सूत्र, यह नाता मनुष्य के साथ ही नहीं है, वरन पशु-पक्षी-नदी-पर्वत, जड़-चेतन, संपूर्ण जगत के साथ है। यह स्नेह बंधन इसी प्रकार बना रहे।

एक बात और, जब कभी हम पानी और प्रकृति की चिंता तथा चर्चा करेंगे तो उसके साथ-साथ अनिवार्य रूप से पेड़, पहाड़, जीव-जन्तुओं, हवा, जैवविविधता की चिन्ता और चर्चा भी करनी पड़ेगी। प्राकृतिक घटकों को खंड-खंड में नहीं अपितु एक दूसरे के पूरक के रूप में मान्यता देकर समाज के एजेण्डे पर लाना होगा। प्राकृतिक घटकों पर समग्रता में विचार करना होगा। वही समाज का एजेण्डा है। वही समाज की अपेक्षाओं का आईना है। वही हमारा भविष्य है। वही असली सरोकार है। वह चिन्ता, पर्यावरण चेतना है। उसी चेतना के कारण अनेक बार समाज मुख्य धारा में आया है।

पर्यावरण चेतना - इतिहास के पन्नों में

भारतवर्ष में पर्यावरण चेतना और अनुकूल विकास के प्रमाण वैदिक काल से मिलने लगते हैं। इसी कारण, हमारे प्राचीन ग्रन्थों में प्रकृति एवं उसके घटकों (वन, जल, वृक्ष, पर्वत, जीव-जन्तुओं इत्यादि) के प्रति विशेष सम्मान भाव तथा पूजा का उल्लेख मिलता है। द्वापर युग में कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत की पूजा को प्रकृति की पूजा माना जाता है। इस पूजा के पक्ष में तर्क देते हुए कृष्ण ने कहा था कि गोकुल ग्राम के पशुपालक समाज की आजीविका का आधार, गोवर्धन पर्वत की जैव-विविधता है।

भारतीय समाज ने स्थानीय पर्यावरण और मौसम-तंत्र के सम्बन्ध को अच्छी तरह समझकर नगर बसाना, खेती तथा पशुपालन करना एवं आजीविका को निरापद बनाना संभव बनाया था। उनके सम्बन्ध के विश्लेषण से पता चलता है कि अलग अलग कृषि-जलवायु क्षेत्रों में बसे भारतीय

ग्रामों ने खेत, खलिहान, चारागाह, जंगल और बाग-बगीचों की एक-दूसरे पर निर्भर तथा मददगार प्रणाली विकसित कर ली थी। यह प्रणाली स्थानीय जरूरतों की पूर्ति के साथ साथ जलवायु के अनुकूल थी। यह प्रणाली बाह्य मदद से पूरी तरह मुक्त थी। निरापद थी। साइड-इफेक्ट से मुक्त थी। उसकी चर्चा खेती वाले हिस्से में विस्तार से की गई है।

भारत के अलावा, अरब देशों के चिकित्सा शास्त्रों में वायु, जल, मृदा प्रदूषण तथा ठोस अपशिष्टों की व्यवस्था करने का उल्लेख है। इसी प्रकार, जब लन्दन में कोयले के धुएँ के कारण प्रदूषण बढ़ गया तो सन 1272 में, ब्रिटेन के शासक किंग एडवर्ड प्रथम ने कोयला जलाना प्रतिबंधित किया। औद्योगिक इकाइयों द्वारा छोड़े धुएँ के कारण जब वायु प्रदूषण का खतरा बढ़ा तो ब्रिटेन ने सन 1863 में ब्रिटिश एल्कली एक्ट (पर्यावरण कानून) पारित किया। इस कानून की मदद से हानिकारक गैसों द्वारा होने वाले वायु प्रदूषण को रोका गया। महारानी विक्टोरिया के शासन काल में 'चलो प्रकृति की ओर लौटें' आंदोलन हुआ, जनचेतना बढ़ी तथा प्राकृतिक संरक्षण के लिए अनेक सोसायटियों का गठन हुआ। सन 1739 में बैंजामिन फ्रेंकलिन तथा अन्य बुद्धिजीवियों ने चमड़ा उद्योग को हटाने तथा कचरे के विरुद्ध, अमेरिका की पेन्सिलवानिया एसेम्बली में, पिटीशन दायर की। 20वीं शताब्दी में, पर्यावरण आंदोलन का विस्तार हुआ तथा वन्य जीवों के संरक्षण की दिशा में प्रयास हुए।

सन 1962 में, अमेरिकी जीवशास्त्री रचेल कार्सन की पुस्तक 'साइलेन्ट स्प्रिंग' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में डी.डी.टी. तथा अनेक जहरीले रसायनों के कुप्रभावों के बारे में जानकारी दी गई थी। जानकारी से पता चला कि डी.डी.टी. तथा अन्य कीटनाशियों के उपयोग से लोगों में कैन्सर पनप रहा है। पक्षियों की संख्या में कमी आ रही है। इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद, अमेरिका में पर्यावरण के प्रति जनचेतना बढ़ी। सन 1970 में एन्वायरनमेंटल प्रोटेक्शन एजेन्सी का गठन हुआ। सन 1972 में डी.डी.टी. के उपयोग पर रोक लगी। इसी दौरान, अनेक नये पर्यावरण समूह जैसे ग्रीनपीस तथा पृथ्वी मित्र अस्तित्व में आए।

भारत के प्रमुख वृक्ष बचाओ आंदोलन

पर्यावरणी ह्रास का सबसे अधिक प्रभाव गरीब लोगों पर पड़ता है इसलिए जब असहायता की स्थिति निर्मित होती है तो प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण खोता समाज मुखर होने लगता है और उम्मीद की टूटती डोर की कोख से पर्यावरणी आंदोलन प्रारम्भ होते हैं। भारत के प्रमुख वृक्ष बचाओ आंदोलन निम्नानुसार हैं -

विश्नोई समाज का वृक्ष बचाओ आन्दोलन

सन 1732 में जोधपुर रियासत में वृक्षों की रक्षा के लिए आन्दोलन हुआ था। जोधपुर के महाराजा अभय सिंह किले का निर्माण कराना चाहते थे। उन्होंने अपने सैनिकों को चूना बनाने के लिए बड़ी मात्रा में खेजड़ी के वृक्षों को काटने के आदेश दिए। विश्नोई समाज की अमृतादेवी तथा उनकी तीन पुत्रियों ने राजाज्ञा का विरोध किया। उन्होंने वृक्षों को बचाने के प्रयास में अपने प्राणों की आहुति दी। उनके बलिदान की सूचना विश्नोई समाज में फैल गई। सूचना पाकर 83 गाँवों के विश्नोइयों ने आंदोलन किया। इस आन्दोलन में 363 व्यक्तियों की जान गई। इस बलिदान के बाद, जोधपुर नरेश ने विश्नोई ग्रामों के समीप के वनों तथा वन्य जीवों के संरक्षण के लिए आदेश

जारी किया। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य वृक्षों की रक्षा था। विश्नोई समाज में शवदाह की प्रथा नहीं है। यह प्रथा वृक्षों के प्रति उनकी आदर भावना की प्रतीक है।

चमोली का चिपको आन्दोलन

यह आन्दोलन उत्तरांचल के हिमालय क्षेत्र में सन 1973 में प्रारंभ हुआ था। चमोली जिले की स्वयंसेवी संस्था (दशौली ग्राम स्वराज मंडल) ने ग्रामीण समाज के सहयोग से वन सम्वर्द्धन का उल्लेखनीय कार्य किया है। चण्डीप्रसाद भट्ट ने इसे जन आन्दोलन बनाया तथा ख्याति दिलाई।

चमोली जिले का स्थानीय समाज, खासकर रेनी, गोपेश्वर तथा डूंगरी-पायटोली गाँवों की ग्रामीण महिलाएँ अपनी आजीविका तथा चारा, ईंधन इत्यादि की आवश्यकता के लिए स्थानीय वनों पर आश्रित थीं। जंगल कटने से उनकी आजीविका पर संकट संभव था, इसलिए जंगल काटने आए ठेकेदारों के लोगों को रोकने के लिए वे अपने बाल-बच्चों सहित आगे आई। उन्होंने वृक्षों से चिपक कर, वृक्षों को बचाने का प्रयास किया था। धीरे धीरे यह जन आन्दोलन आसपास के क्षेत्रों में फैला, सर्वत्र उसकी चर्चा हुई, सबने आन्दोलन की आवश्यकता से सहमति जताई तथा पूरे देश तथा विदेशों में उसका सन्देश गया। चिपको आन्दोलन, वन संरक्षण का पर्याय बना और उसकी अलग पहचान बनी। कुछ लोग, इसे वन संरक्षण और पुनर्जीवन का सत्याग्रह मानते हैं। इस आंदोलन का एक और पक्ष है जो बताता है कि वन तथा सार्वजनिक भूमि भले ही सरकार की हो, पर वह नैतिक रूप से उस समाज की है जो अपनी आजीविका के लिए उससे जुड़ा है।

केरल राज्य की शान्त घाटी का आन्दोलन

केरल राज्य के पालघाट जिले में शान्त घाटी स्थित है। इस घाटी में शोर मचाने वाले कीड़ों (साइक्रेड) के नहीं मिलने के कारण उसे शान्त घाटी के नाम से जाना जाता है। इस घाटी में उष्णकटिबन्धीय वर्षा-वन पाए जाते हैं। ये जंगल अब विलुप्ति की कगार पर हैं। इस घाटी के जंगलों में मनुष्यों का बहुत कम हस्तक्षेप हुआ है। इस घाटी को पाँच लाख साल पुराने जैविक पालने की भी संज्ञा दी जाती है। इन वनों में दुर्लभ जीवजन्तु तथा पश्चिमी घाट में मिलने वाली कुछ दुर्लभ वनस्पतियाँ पाई जाती हैं।

कुछ साल पहले केरल सरकार ने इस क्षेत्र में जलविद्युत परियोजना के निर्माण का निर्णय लिया था। इस योजना से 60 मेगावाट बिजली और मलावार क्षेत्र की 10,000 हैक्टर जमीन पर सिंचाई प्रस्तावित थी। सरकार ने इस योजना के प्रारंभिक कार्यों पर लगभग दो करोड़ खर्च भी किए हैं। इस योजना से शान्त घाटी के पर्यावरण तथा जैव विविधता को गंभीर खतरा संभावित था इसलिए कुछ पर्यावरणविदों तथा अनेक स्वयंसेवी संस्थानों ने योजना से असहमति जाहिर की। इसके बाद 30 अगस्त, 1979 को फ्रेन्डस आफ दी ट्रीज सोसाइटी द्वारा दायर की याचिका पर केरल उच्च न्यायालय ने स्थगन आदेश दिया। भारत सरकार ने बढ़ते आन्दोलनों तथा बौद्धिक दबाव के कारण शान्त घाटी में जलविद्युत योजना को रोक दिया। इस आन्दोलन का उद्देश्य जैवविविधता तथा वर्षा-वनों की रक्षा था। यह जागरूकता और सामाजिक पहल का परिणाम भी है।

ऐपीको आंदोलन

उत्तरी कर्नाटक के समुद्र तट के समीप पश्चिमी घाट पर्वत श्रृंखला है। यहाँ की जैवविविधता बहुत समृद्ध है। इस क्षेत्र से बहुमूल्य औषधियाँ, चारा, फल तथा ईंधन प्राप्त होता है। इस क्षेत्र में सदाबहार वन पाए जाते हैं। चिपको आंदोलन से प्रेरणा लेते हुए यहाँ के स्थानीय निवासियों ने वृक्षों की कटाई का विरोध किया था। सन 1983 में कालासेकुडरगोड के जंगलों में 150 महिलाओं तथा 30 पुरुषों ने वृक्षों से चिपक

कर वृक्षों की रक्षा की थी। यह विरोध 38 दिन तक जारी रहा था। आन्दोलन के 38 दिन बाद, वृक्षों की कटाई पर रोक लगी। बेनगाँव, हर्से तथा निडिगोड के जंगल बचे। आम लोगों को सफलता मिली। इस आंदोलन से सारे दक्षिण भारत में जंगलों तथा पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़ी। इस आन्दोलन का उद्देश्य सदाबहार वनों के वृक्षों के साथ साथ जैवविविधता की रक्षा था।

वनों की आवश्यकता

वनों की आवश्यकता निर्विवाद है क्योंकि वे अपनी प्राकृतिक शुद्धीकरण व्यवस्था को सक्रिय रख आक्सीजन (प्राणवायु) का सन्तुलन बनाने तथा उसे संरक्षित करने में योगदान देते हैं। वनों के कम होने का मतलब है आक्सीजन की कमी। आक्सीजन की कमी का मतलब है जीवन पर संकट। इस आवश्यकता के कारण वे अपरिहार्य हैं। इसके अलावा, नदियों को पानी उपलब्ध कराने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। मनुष्यों के लिए औषधियाँ, भोजन, उद्योगों के लिए कच्चा माल प्रदान करते हैं। तापमान नियंत्रण में योगदान देते हैं। माँसाहारी जानवरों से समाज को सुरक्षित रखते हैं।

पर्यावरण सन्तुलन एवं संरक्षण में उनका योगदान बहुआयामी और विविध है। वे पृथ्वी के पारिस्थितिक तंत्र (इको सिस्टम) का सन्तुलन कायम रखने वाले प्रमुख एवं अनिवार्य घटक हैं।

जैवविविधता की आवश्यकता

इकोसिस्टम सेवाओं के लिए जैवविविधता अनिवार्य है। उसके घटने से गरीबी बढ़ती है। यह आश्चर्यजनक है कि आदिवासियों ने अपनी परम्परागत व्यवस्थाओं और रीति-रिवाजों द्वारा जंगलों के पर्यावरण को काफी हद तक ठीक स्थिति में रखा है। इसके उलट, जैव विविधता का विकृत रूप, सामान्यतः उन इलाकों में देखा गया है जहाँ वन और जीवन के रिश्तों की अनदेखी करने वाला समाज निवास करता है। सभी सम्बन्धितों को इस हकीकत को अच्छी तरह समझने की आवश्यकता है।

वन संरक्षण - वन विभाग की भूमिका

कई लोग मानते हैं कि वन संरक्षण की जिम्मेदारी केवल वन विभाग की है। यह पूरी तरह सही नहीं है। यह सामाजिक जिम्मेदारी और नागरिक दायित्व भी है। उद्योगों की भी भूमिका है। कानून बनाने वालों की भी भूमिका है।

भविष्य में जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम में बदलाव आएगा। तापमान में वृद्धि होगी तथा वाष्पीकरण बढ़ेगा। वनों और वन्य प्राणियों पर पानी का संकट बढ़ेगा। वनों और वन्य प्राणियों को जलाभाव के संकट से बचाने के लिए पानी की माकूल व्यवस्था करना आवश्यक होगा। उस व्यवस्था का लक्ष्य जल-स्वावलम्बन होना चाहिए ताकि वन अपनी प्राकृतिक जिम्मेदारी का निर्वाह कर सकें। जल स्वावलम्बन से ही जीव-जन्तुओं के लिए वन में भोजन और पानी का इंतजाम सुनिश्चित होगा। फुड-चेन पर पड़ने वाले संभावित असर की कमियों को दूर करने के लिए परिणाममूलक प्रयास करना होंगे।

वन संरक्षण - आम आदमी की भूमिका

नागरिक जिम्मेदारी के अन्तर्गत समाज द्वारा वन विभाग को कुछ सुझाव दिए जा सकते हैं। पहला सुझाव मौजूदा प्रयासों की समीक्षा हो सकता है। दूसरा सुझाव हो सकता है जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव को कम कर वनों की सेहत तथा दायित्वों को बरकरार रखना। अर्थात वन और जैवविविधता को सुरक्षित रखने के लिए प्रत्येक वन समूह को जलवायु की प्रतिकूलता से निपटने योग्य बनाना। इसके लिए वन विभाग को अपनी कार्ययोजना में दो प्रमुख सुधार करने की आवश्यकता होगी। पहले सुधार के अन्तर्गत वनों में पानी के भंडार, नदियों में अविरल प्रवाह के लिए

योगदान, नमी की उपलब्धता, जैवविविधता और फुड-चेन जैसे अनेक बिन्दुओं को यथेष्ट रूप से समाहित करना होगा। दूसरे सुधार के अन्तर्गत भूमि कटाव और जल संरक्षण के कामों की तकनीकी दक्षता को और बेहतर बनाना होगा। समाज द्वारा कार्य योजना में दोहन और उत्पादन के सन्तुलन एवं जैवविविधता को आदर्श बनाने तथा मिश्रित वनों को विकसित करने हेतु अनुरोध किया जा सकता है। समाज की अपेक्षा होगी कि सामुदायिक वनों के विकास में ग्रामीण समाज की जिम्मेदारी बढ़े। विभाग इस हेतु पहल करे। समाज चाहेगा कि वन सम्पदा का दोहन प्रकृति से तालमेल और वनों की कुदरती भूमिका को ध्यान में रखकर हो। वातावरण में आक्सीजन की कमी नहीं हो पाए। आक्सीजन की कमी के कारण जीवन पर संकट नहीं पनपे। समाज की यह भी अपेक्षा है कि सरकार की भूमिका संरक्षक तथा वन विभाग की भूमिका सहयोगी और उत्प्रेरक की हो। वनों की सुरक्षा करने वाले समाज को उसका ट्रस्टी और लाभार्थी बनाया जाना चाहिए। इंडियन फारेस्ट एक्ट 1927 में उल्लेखित ग्राम वन की अवधारणा को लागू करना चाहिए।

मौजूदा कायदे-कानूनों के बंधनों के कारण आम आदमी जंगल में जाकर वृक्षारोपण नहीं कर सकता पर अपने घर के आसपास तो वृक्ष लगाने का काम कर सकता है। उनकी रक्षा कर सकता है। अपने मित्रों, सगे संबंधियों तथा परिचितों को पेड़ लगाने के लिए प्रेरित कर सकता है। अनेक नगरीय निकाय तथा पंचायतें स्मृति-वनों को प्रोत्साहित करते हैं। हम अपने आसपास प्राणवायु बढ़ाने वाले कार्यक्रमों को सफल बनाने में अपना योगदान दे सकते हैं। सूखते पेड़ों को पानी देकर उन्हें बचा सकते हैं।

हरियाली से जुड़ा हर प्रयास हकीकत में योगदान होता है। उस नागरिक दायित्व को पूरा करने के लिए अपने घर में किचिन गार्डन, फूल वाले वृक्ष तथा सब्जियाँ लगाएँ। संभव हो तो टैरेस-गार्डन विकसित करें। बड़े नगरों में कई मंजिला भवन बनने लगे हैं। इनमें बहुत से लोग निवास करते हैं। उनकी आक्सीजन आवश्यकता को पूरा करने के लिए कई मंजिला भवनों के आसपास सघन वृक्षारोपण होना चाहिए। हर बसाहट के आसपास ढेर सारे पार्क होना चाहिए। ढेर सारी हरियाली होना चाहिए।

लकड़ी के फर्नीचर का कम से कम उपयोग करें। कागज के इस्तेमाल में संयम बरतें। कागज के दोनों ओर लिखें। इससे लगभग 50 प्रतिशत कागज तो बचेगा ही, वन भी बचेंगे। रीसाइकिल्ड कागज का उपयोग बढ़ाएँ। उसी से बने लिफाफे, बधाई कार्ड और कम्प्यूटर संदेश का उपयोग करें। रेल टिकिट की हार्ड कापी के स्थान पर मोबाइल पर दर्ज टिकिट संदेश को बढ़ावा दें। अधिक से अधिक कैशलेस ट्रान्जेक्शन करें। और भी अनेक तरीके हैं जिन्हें अपनाने से जंगल बचाए जा सकते हैं। सामाजिक दायित्व पूरा किया जा सकता है।

(Email - kgvyas_jbp@rediffmail.com)

स्मृति शेष

प्रख्यात पत्रकार श्री गोविंद श्रीपाद तलवलकर का निधन

प्रख्यात पत्रकार श्री गोविंद श्रीपाद तलवलकर का ह्यूस्टन, अमेरिका में बुधवार, 22 मार्च 2017 को निधन हो गया। वे 91 वर्ष के थे। श्री तलवलकर 'महाराष्ट्र टाइम्स' के संपादक रहे। सम सामयिक मुद्दों के बेवाक विश्लेषण के लिए उन्हें विशेष रूप से जाना और सराहा जाता है। आपने प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों पर कई किताबें लिखी हैं। एडीटर्स गिल्ड आफ इंडिया के अध्यक्ष राज चेंगप्पा, महासचिव प्रकाश दुबे और कोषाध्यक्ष कल्याणी शंकर ने श्री तलवलकर के निधन पर श्रद्धांजलि अर्पित की है।

रिपोर्ट

ऋषि पत्रकार पं. अच्युतानंद मिश्र की शख्सियत के बहाने पत्रकारिता पर विमर्श

■ उमेश चतुर्वेदी

दुनिया की वही भाषाएँ महान और बड़ी बन पाई हैं, जिन्होंने अपने नायकों का सम्मान किया। उन भाषाओं को भी नई ऊँचाइयाँ छूते देखा जा सकता है, जिनके समाजों में अपने शब्दसाधकों के लिए सहज सम्मान है। हिंदी की दुनिया को इन संदर्भों में हतभाग्य कहा जा सकता है, क्योंकि वह अपवादों को छोड़कर अपने शब्दकर्मियों, संस्कृति कार्यकर्ताओं का सम्मान करना नहीं जानती। ऐसे माहौल में अगर हिंदी पत्रकारिता के शीर्ष पुरुष अच्युतानंद मिश्र के अस्सीवें जन्मदिन पर हिंदी अध्यापन, पत्रकारिता, राजनीति और दूसरी सांस्कृतिक विधाओं से जुड़े लोग और हस्तियाँ जुटीं तो इसे हिंदी समाज में सकारात्मक बदलाव का प्रतीक माना जाना चाहिए। छह मार्च 2017 को अच्युतानंद मिश्र ने अपनी सकारात्मक जिंदगी के अस्सी वर्ष पूरे किए। इस मौके पर राजधानी दिल्ली में हिंदी की अग्रणी समाचार एजेंसी 'हिंदुस्तान समाचार' और भोपाल के 'माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान' ने गरिमामय कार्यक्रम आयोजित किया। अध्यक्षता समाजवादी चिंतक रघु ठाकुर ने की।

कार्यक्रम में पं. अच्युतानंद मिश्र को मानपत्र और शाल-श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया गया। लेकिन यह कार्यक्रम सामान्य जन्मदिन कार्यक्रम नहीं था। इसकी बड़ी वजह यह है कि 'जनसत्ता' और 'लोकमत समाचार' जैसे अखबारों के संपादक एवं भोपाल के माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता और संचार विश्वविद्यालय के कुलपति रहे अच्युतानंद मिश्र को रस्मी जन्मदिन मनाना गवारा नहीं। इसलिए इस मौके पर औपचारिकता के खाँचे से अलग हिंदी पत्रकारिता की मौजूदा चुनौतियों पर चिंताएँ जाहिर की गईं। हाँ, इसके पहले सप्रे संग्रहालय द्वारा तैयार और वरिष्ठ पत्रकार विजयदत्त श्रीधर द्वारा संपादित 'हिंदी पत्रकारिता : प्रवृत्तियाँ और सरोकार' नामक पुस्तक अच्युतानंद जी को समर्पित की गई। इस पुस्तक में हिंदी पत्रकारिता पर बीसियों विद्वानों और शोधकर्ताओं के गवेषणात्मक आलेख शामिल किए गए हैं। बहरहाल इस कार्यक्रम में विषय प्रवेश करते हुए वरिष्ठ पत्रकार, 'यथावत' पत्रिका के संपादक और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष रामबहादुर राय ने हिंदी पत्रकारिता की मौजूदा चुनौतियों, खामियों और खूबियों का उल्लेख करते हुए विचारोत्तेजक तथ्य रखे। श्री राय ने कहा - ''राज और सत्ता में हस्तक्षेप की जो हैसियत पहले अँगरेजी पत्रकारिता के पास थी, उसे अब हिंदी पत्रकारिता ने हासिल कर लिया है। हिंदी

पत्रकारिता ने ताकत हासिल तो की है, लेकिन उसमें दुर्गुण भी आ गए हैं। मीडिया घराने व्यापारिक घराने बन गए हैं। हिंदी पत्रकारिता डालमिया प्रवृत्ति से ग्रस्त हो गई। मीडिया की आजादी को मीडिया संस्थानों के मालिकों ने अपने लिए मान लिया है। मीडिया नियमन की उचित व्यवस्था न होने के चलते भारत सरकार भी इस प्रक्रिया में भागीदार हो गई है।'' श्री राय यहीं पर नहीं रुके। उन्होंने हिंदी पत्रकारिता की मौजूदा समस्या, समाज और संस्कृति विमुखता की ओर भी ध्यान दिलाया। उन्होंने कहा कि हिंदी पत्रकारिता में लोकहित का अभाव है। श्री राय ने मीडिया की इस समस्या की ओर ध्यान दिलाते हुए अतीत में किए गए पत्रकारों के उस प्रयास को भी याद किया, जिसके तहत मौजूदा प्रेस कौंसिल की जगह मीडिया कमीशन की माँग की थी। श्री राय ने सरकार से मीडिया की उचित नियमन व्यवस्था की जरूरत पर जोर देते हुए कहा - ''मीडिया जगत की दुरभिसंधियों को तोड़ने के लिए पूरा मीडिया समाज सरकार से यह माँग करे कि वह एक संवैधानिक व्यवस्था बनाए, जिससे मीडिया का नियमन किया जाए। जो सुप्रीम कोर्ट, संसद आदि की तरह संवैधानिक व्यवस्था हो, ताकि अन्याय, लोभ और भय की दुरभिसंधि टूट सके।'' श्री राय ने कहा कि मीडिया घराने एकाधिकारवादी हो गए हैं। यह लोकतंत्र के लिए घातक होता है। उन्होंने मीडिया परिवार का आह्वान किया कि वह उठ खड़ा हो। श्री राय ने कहा कि विषाद से थककर बैठ जाना आत्मघाती होता है। श्री राय ने कहा - ''मीडिया को निर्बल का बल बनना है, बेजुबान की जुबान बनना है, लोकतंत्र की आवाज बनना है और राष्ट्रीयता के साथ ही भारतीय संस्कृति को बढ़ावा देना है। इसलिए उसे ऐसा करना ही होगा।''

पं. अच्युतानंद मिश्र के जन्मदिन पर इससे अच्छी वैचारिक बहस की शुरुआत हो ही नहीं सकती थी। कहना न होगा कि बाद में जिन्होंने भी अपना विचार रखा, राय साहब द्वारा उठाए गए सवालों और चिंताओं के ही इर्द-गिर्द घूमता रहा। जनसत्ता के पूर्व संपादक राहुल देव ने कहा कि जो हाल चुनाव सुधारों का है, वही हाल हिंदी या भाषाई पत्रकारिता का हो गया है। उन्होंने कहा कि हिंदी भले ही सबसे बड़ी भाषा हो, केंद्रीय भाषा नहीं। वह लगातार जटिल होती गई है। राहुल देव ने सवाल उठाया कि हिंदी पत्रकारिता में भाषावादी एकता नहीं है। मालिक नहीं चाहते थे कि हिंदी को संवैधानिक दर्जा मिले। फिर हिंदी पत्रकारिता के इन सवालों को उठाएगा कौन? जब हिंदी पत्रकारिता में अब प्रभावी यूनियनें ही नहीं हैं। उन्होंने दुख जताया कि अपवादों को छोड़ दें तो हिंदी की पत्रकारिता हिंदी हंता है। जनसत्ता के पूर्व सहायक संपादक जवाहरलाल कौल ने कहा कि जब टाइम्स आफ इंडिया के मालिक खुद यह कहने लगते हैं कि अखबार निकालना भी किसी अन्य कारोबार की ही तरह है तो पत्रकारिता का यह हाल होना ही था। उन्होंने राय साहब द्वारा सुझाई गई मीडिया नियमन की संवैधानिक व्यवस्था को लेकर चिंता भी जताई। श्री कौल ने कहा कि अगर यह व्यवस्था सरकार और मीडिया मालिकों को ही बनानी है तो उससे व्यवस्था और भी जटिल ही होगी। इस मौके पर दीनदयाल शोध संस्थान के प्रमुख डा. महेशचंद्र शर्मा ने कहा कि इस विमर्श से जाहिर है कि पत्रकारिता की मौजूदा प्रवृत्तियों में बदलाव की चाहत पत्रकार भी रखते हैं। इसलिए यह देखना होगा कि पत्रकारिता किस तरह इन बदलावों की तरफ बढ़ती है। पत्रकारिता में बदलाव की जरूरत और नियमन की आवश्यकता को मशहूर कथाकार चित्रा मुद्गल ने सीधे-सीधे स्वीकार तो नहीं किया, अलबत्ता पत्रकारिता में लगातार हो रही छँटनी और पत्रकारों के समक्ष खड़े हो रहे रोजी-रोटी के संकट पर सवाल जरूर उठाया। उन्होंने कहा कि हिंदुस्तान टाइम्स से तीन सौ पत्रकारों-गैर पत्रकारों की छँटनी की गई, लेकिन किसी ने इस पर चिंता नहीं जताई। इससे जाहिर होता है कि पत्रकारिता की अपनी दुनिया से

भी विवेकशीलता घटी है।

श्री रामबहादुर राय की बात को आगे बढ़ाया, भोपाल के हिंदी भवन के प्रमुख कैलाशचंद्र पंत ने। उन्होंने कहा कि हिंदी पत्रकारिता का शक्ति के रूप में उदय तो हुआ है, लेकिन नैतिक शक्ति के रूप में उसका पतन हुआ है। श्री पंत ने कहा कि इस गिरावट की जड़ को खोजना होगा। उन्होंने कहा कि अपने यहाँ जनतंत्र तो शक्तिशाली हुआ है, लेकिन जन अभी तक शक्तिशाली नहीं बन पाया है, इस पर भी विचार करना होगा। लेकिन वरिष्ठ पत्रकार और हिंदी 'आउटलुक' के संपादक आलोक मेहता ने रामबहादुर राय की राय से असहमति जाहिर की। उन्होंने कहा कि हिंदी पत्रकारिता में अच्छे-बुरे लोग हर दौर में रहे हैं। हिंदी पत्रकारिता में हर दौर में राक्षस थे, सिर्फ देवता ही नहीं थे। इस मौके पर 'चौथी दुनिया' के संपादक और मशहूर पत्रकार संतोष भारतीय ने कहा कि पत्रकारिता में गिरावट के खिलाफ हर लड़ाई को लड़ने के लिए वे अब भी तैयार हैं।

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे मशहूर समाजवादी नेता रघु ठाकुर ने कहा कि पत्रकारिता आज जितनी अविश्वसनीय बन गई है, उतनी पहले कभी नहीं रही। उन्होंने कहा कि पत्रकारिता की विश्वसनीयता पर यह संकट पूरी दुनिया में है। श्री ठाकुर ने अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप का हवाला देते हुए कहा कि ट्रंप ने दुनिया के सबसे प्रतिष्ठित पत्र 'न्यूयार्क टाइम्स' के बारे में कहा कि वह झूठ बोल रहा है। श्री ठाकुर ने हिंदी पत्रकारिता के लिए नया मुहावरा ही रच दिया। उन्होंने कहा कि हिंदी पत्रकारिता का रूपर्ट मर्डोकीकरण हो गया है और वह स्वार्थपूर्ति का माध्यम भर रह गया है। उन्होंने कहा कि हिंदुस्तान टाइम्स में बिड़ला परिवार की पूँजी लगी है। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पिछली सदी में बंगाल में जो दुर्भिक्ष पड़ा था, उस दौरान अनाज की जमाखोरी से पैसे कमाने वालों में वही बिड़ला परिवार भी था। श्री ठाकुर ने कहा कि पहले भी पत्रकारिता में कमियाँ थीं, लेकिन अच्छे के लिए एक जनमत था और एक सीमा के बाद पत्रकार के लिए उस जनमत और सीमारेखा के परे जाना संभव नहीं था। लेकिन आज संपादक का पद ही संपादक की भूमिका के लिए नहीं, बल्कि पीआरओ यानी जनसंपर्क की भूमिका में समा गया है।

हिंदुस्तान समाचार एजेंसी के प्रमुख और राज्यसभा सदस्य रवींद्र किशोर सिन्हा ने हिंदी पत्रकारिता की समस्याओं की तरफ ध्यान दिलाते हुए पत्रकारिता की दुनिया में संघवाद को बढ़ावा देने की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि पत्रकारिता में बदलाव लाने के लिए छोटे-छोटे अखबार निकालने जरूरी हैं। उन्होंने कहा कि देश में छोटे-छोटे अखबार तो हैं, लेकिन उनकी समस्याओं की तरफ किसी का ध्यान नहीं है। उन्होंने सोशल मीडिया के उभार को पत्रकारिता में बदलाव के लिए प्रेरक और चुनौती भी बताया। सिन्हा ने कहा कि अतीत में संपादक सरकारों की माँग पर किसी खबर के अति इस्तेमाल को भले ही

रोकते थे, लेकिन खबर को कभी नहीं रोकते थे। लेकिन मौजूदा दौर में अब राजनेता या आर्थिक ताकतों के दबाव में खबर ही रोक दी जाती है। उन्होंने इस प्रवृत्ति पर भी लगाम लगाने की जरूरत पर जोर दिया।

चूँकि कार्यक्रम अच्युता जी के जन्मदिन के संदर्भ में आयोजित हुआ था, इसलिए उनके व्यक्तित्व पर भी वक्ताओं ने ध्यान दिलाया। खुद अच्युतानंद जी ने कहा - ''मैंने जो कुछ भी किया है, वह मेरे लिए उपलब्धि नहीं, बल्कि लोगों का सहयोग है।'' श्री मिश्र ने पत्रकारिता की गौरवशाली परंपरा को याद करते हुए कहा - ''स्वाधीनता संग्राम की पत्रकारिता में यदा-कदा कभी कोई पैसा लगा देता था। अखबार चल जाता था। अगर बंद भी हो जाता था, तब उसे चलाने के लिए पाठक ही तैयार हो जाते थे। ऐसा इसलिए होता था, क्योंकि तब पत्रकारिता मिशन थी और उसका लक्ष्य लोकहित था। लेकिन आज पत्रकारिता में नौकरी का भाव है। आज अखबार पाठकों के लिए कम, विज्ञापनदाताओं के लिए ज्यादा निकाले जा रहे हैं।''

श्री अच्युतानंद मिश्र की शख्सियत को माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान के संस्थापक विजयदत्त श्रीधर ने खासे आत्मीय ढंग से स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि अच्युताजी लोकसंग्रही व्यक्ति हैं। माखनलाल चतुर्वेदी विश्वविद्यालय के कुलपति रहते वक्त अच्युता जी ने ही दीक्षांत समारोह की परंपरा की शुरुआत की। चाहे अखबार हो या फिर विश्वविद्यालय, अच्युताजी ने अपने सहयोगियों को काम करने की स्वतंत्रता दी। विजयदत्त जी ने कहा - ''अच्युता जी नवाचार को प्रोत्साहन देने, अपनी विचारधारा के बावजूद दूसरों की विचारधारा के प्रति खुलापन रखने के लिए जाने जाते हैं।'' श्रीधर ने अच्युता जी के निरभिमानी, विनम्र और निश्छल व्यक्तित्व को खासतौर पर रेखांकित किया। उन्होंने कहा कि कुलपति के पद से जब अच्युता जी ने अवकाश ग्रहण किया तो उन्हें ऐसी भावुक और सम्मान भरी विदाई दी गई, जिसकी कोई अन्य कुलपति कल्पना भी नहीं कर सकते। श्रीधर जी के अनुसार, अच्युताजी के आचार-व्यवहार की वजह से ही ऐसा हुआ। अच्युता जी के व्यक्तित्व पर बोलने से पहले राहुल देव भावुक हो गए। उन्होंने कहा कि पैंतालीस साल के उनके अभिभावकत्व की वजह से अच्युताजी पर बोल पाना उनके लिए संभव नहीं है। वहीं आलोक मेहता ने उन्हें पत्रकारिता का ऋषि बताया। उन्होंने कहा कि पत्रकारिता के देव-राक्षसों के बीच अच्युता जी ऋषि हैं। चित्रा मुद्गल ने अच्युता जी की शख्सियत को पत्रकारिता जगत के लिए अनुकरणीय बताते हुए कहा कि पत्रकारिता की मौजूदा चिंताओं से पार पाने की राह हमें अच्युताजी जैसा व्यक्ति ही दिखा सकता है। वहीं रघु ठाकुर ने अच्युता जी के सुदर्शन व्यक्तित्व का जिक्र करते हुए कहा कि विचारधाराओं के बीच पत्रकारों को कैसे संतुलन रखना चाहिए, उसके बेहतर उदाहरण अच्युता जी हैं।

चूँकि यह आयोजन अच्युता जी के अस्सीवें जन्मदिन पर था, इसलिए उनसे जुड़ी कुछ बातों का जिक्र न होना उन जानकारों को खटका, जो अच्युता जी को ठीक से जानते हैं। अच्युता जी का एक बड़ा योगदान हिंदी और भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा को स्थापित करने की दिशा में किया गया कार्य भी रहा है। बहुत कम लोगों को पता है कि संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं के लिए भर्ती का माध्यम भारतीय भाषाओं को बनाने की माँग को लेकर संघ लोक सेवा आयोग के सामने जो सबसे लंबा धरना चला, उसके प्रणेताओं में से एक अच्युता जी भी रहे। मुलायम सिंह यादव जब पहली बार मुख्यमंत्री बने तो राज्यों के बीच आपसी पत्र व्यवहार के लिए हिंदी और भारतीय भाषाओं को माध्यम बनाने की शुरुआत उन्होंने अच्युता जी की ही प्रेरणा से की थी।

(Email - uchaturvedi@gmail.com)

पत्रकारिता को स्थापित भारतीय मूल्यों की तरफ लौटना ही होगा

'पत्रकारिता के बदलते संदर्भ' विषय पर सागर में परिचर्चा

रपट - युगेश शर्मा

इन दिनों पत्रकारिता चिंता और चिंतन का विषय बना हुआ है। समाचार पत्रों के प्रकाश के हिसाब से महत्वपूर्ण माने जा रहे नगरों और महानगरों के अलावा अन्यत्र भी पत्रकारों के अलावा समाज के अन्य प्रबुद्ध जन नए संदर्भ में पत्रकारिता की दिशा और दशा पर विमर्श में रुचि ले रहे हैं। लोग यह मानकर चल रहे हैं कि देश की पत्रकारिता भटक गई, कमजोर पड़ गई, तो समाज और राष्ट्र दोनों का बड़ा नुकसान हो जाएगा। क्योंकि हर कालखण्ड में पत्रकारिता राष्ट्रीय आंदोलनों की मशाल लेकर आगे-आगे चली है, फिर चाहे वह स्वतंत्रता संग्राम रहा हो या नवजागरण का दौर। इस पृष्ठभूमि में स्वतंत्रता संग्राम सेनानी स्मृति समिति, सागर ने प्रख्यात समाजवादी चिंतक और सम सामयिक विषयों के प्रखर टिप्पणीकार रघु ठाकुर की अध्यक्षता में 18 मार्च 2017 को परिचर्चा आयोजित की। परिचर्चा का विषय था - 'पत्रकारिता के बदलते संदर्भ।' शिक्षा जगत की महान हस्ती और डा. हरिसिंह गौर की धरती पर हुए इस वैचारिक अनुष्ठान के मुख्य वक्ता थे - माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय, भोपाल के संस्थापक-संयोजक पद्मश्री विभूषित विजयदत्त श्रीधर। परिचर्चा में म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मंत्री-संचालक और 'अक्षरा' के प्रधान संपादक कैलाशचन्द्र पन्त, कथाकार और मासिक पत्रिका 'समावर्तन' के प्रधान संपादक मुकेश वर्मा तथा कथाकार-पत्रकार युगेश शर्मा ने विशिष्ट वक्ता के बतौर भागीदारी की।

परिचर्चा में वक्ताओं ने पत्रकारिता के बदलते हुए संदर्भों को रेखांकित करते हुए कहा कि इन दिनों चाहे पत्रकारिता में पूँजी और बाजार का प्रभाव बढ़ गया हो, फिर भी भारत की पत्रकारिता समाज और राष्ट्र के व्यापक हितों से जुड़े सरोकारों और समकालीन दायित्वों से मुक्त नहीं हो सकती। मूल्यों की रक्षा करना और चुनौतियों के समय समाज और राष्ट्र के साथ दमदारी से खड़ा होना हमारी पत्रकारिता का परमधर्म रहा है। वह इस धर्म से मुक्त नहीं हो सकती। अतः पत्रकारिता को स्थापित भारतीय मूल्यों की तरफ एक बार फिर लौटना ही होगा। इसी में पत्रकारिता और पत्रकार दोनों की भलाई भी निहित है।

श्री विजयदत्त श्रीधर

परिचर्चा के मुख्य वक्ता श्री विजयदत्त श्रीधर ने पत्रकारिता के कल और आज के परिदृश्य का विस्तृत विवेचन किया और पत्रकारिता के अपने निजी अनुभव भी साझा किए। आपने कहा मैं सागर की गौरवशाली धरती पर शिक्षाविद डा. हरिसिंह गौर और मध्यप्रदेश का पहला हिन्दी दैनिक पत्र निकालने वाले मास्टर बल्देवप्रसाद को प्रणाम करता हूँ। पत्रकारिता कोई स्वतंत्र विषय नहीं है। यह तो ऐसा माध्यम है, जो चारों तरफ जो घट रहा है, उससे लोगों को अवगत कराता है और उनका सही मार्गदर्शन करता है। हम पत्रकारिता के शुरू होने के उद्देश्यों की बात करते हैं, तो मालूम होता है कि पत्रकारिता का जन्म देश को राजनीतिक आजादी दिलवाने और समाज सुधार के लिए हुआ था। दासता के समय हमारे देश का कच्चा माल विदेश भेजा जाता था और वहाँ निर्मित सामान हमारे देश में ऊँचे दाम बिकने आता था। इससे हमारे कुटीर उद्योगों को भारी नुकसान हो रहा था। गांधीजी ने इसका विरोध करते हुए स्वदेशी का नारा दिया था। भारतीय भाषाओं के अखबारों ने इस नारे को जन-जन तक पहुँचाने का

काम किया और स्वावलंबन का संदेश देश में फैलाया था। यह हमारी पत्रकारिता का तीसरा उद्देश्य था। शिक्षा को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से जोड़ने के लिए भी पत्रकारिता ने उल्लेखनीय काम किया है। इसको उसका चौथा उद्देश्य माना जा सकता है। यह भी विशेष उल्लेखनीय तथ्य है कि उस समय के समाज सुधारक और अन्य नेतागण या तो स्वयं अखबार या पत्रिका निकालते थे या फिर किसी पत्र-पत्रिका में लिखा करते थे। राजा राममोहन राय, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी श्रद्धानन्द प्रभृति स्वनामधन्य महापुरुषों का ज्वलंत उदाहरण हमारे सामने है। उस दौर की पत्रकारिता की विश्वसनीयता जबर्दस्त थी। ''खेंचो न कमानों को न तलवार निकालो, जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो'', यह भावना तब प्रबल थी। यह पत्रकारिता की ताकत का बयान करती है।

श्री श्रीधर ने कहा - उस जमाने के संपादक निर्भीक के साथ-साथ सिद्धांतवादी भी होते थे। अपने सहयोगियों को सरकार के कोप से बचाने के लिए समाचारों की जवाबदारी अपने ऊपर ले लिया करते थे। संपादक शिरोमणि गणेशशंकर विद्यार्थी ने अपने अखबार के सहयोगी का नाम प्रकट करने के बजाय स्वयं 11 माह की जेल भोगी थी। वह दौर ऐसा था कि आज जैसी सुविधाएँ और वैसे साधन उपलब्ध नहीं थे, फिर भी हमारी पत्रकारिता मिशन की भावना से चल रही थी। झुकने और समझौता करने का दौर तब नहीं था।

आपने कहा, 1990 के बाद उदारीकरण और बाजारीकरण का दौर आया। पहले जो शुभ होता था - उसी को लाभ माना जाता था। किन्तु इस पूँजीवादी दौर में लाभ को ही शुभ माना जाता है, फिर वह किसी भी तरीके से क्यों न हो। विदेशी निवेश आने लगा। पेप्सी और कोकाकोला, गुटखों के नाम पर जहर का बाजार चल पड़ा। कंपनियों ने अखबारों और चैनलों को विज्ञापनों से लाद दिया। फलतः इस जहर को लेकर बड़े अखबारों और पत्रिकाओं; चैनलों ने आँखें बंद कर लीं। हमारे ही देश में एक समय संपादक संस्था बड़ी ताकतवर हुआ करती थी। अब यह संस्था प्रायः समाप्त हो रही है। हमारे यहाँ पत्रकार कितने कद्दावर हुआ करते थे, उसके प्रमाण रूप में एक प्रसंग का जिक्र पर्याप्त होगा। उद्योगपति डालमिया ने जब 'नवभारत टाइम्स' का प्रकाशन प्रारंभ किया, तो उन्होंने उस समय के नामी पत्रकारों के सामने संपादक की पेशकश की। इन पत्रकारों में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी भी थे। उन दिनों चतुर्वेदी जी आर्थिक संकट से जूझ रहे थे, किन्तु उन्होंने डालमिया का प्रस्ताव यह कहकर ठुकरा दिया था कि ''मैं पत्रकारिता के धंधे में पूँजीपतियों के दखल के खिलाफ हूँ।''

पैड न्यूज का कलंक ढो रही है आज की पत्रकारिता, जिससे विश्वसनीयता का संकट पैदा हो गया है। पाठकों को पता नहीं होता कि चुनाव अथवा कारोबार की चौखट में सजी जो खबर वह पढ़ रहा है, दरअसल वह कालेधन में बिकी जगह है। यह पाठकों/दर्शकों के साथ विश्वासघात है।

उन्होंने चिंता जताई कि इन दिनों भाषा को लेकर भी हमारी पत्रकारिता पर अँगरेजी का हमला हो रहा है। सब बाजार के इशारे पर हो रहा है। समाचारों में जरूरत न रहने पर भी अँगरेजी के शब्द ठूँसे जा रहे हैं। बड़े अखबारों ने तो जैसे पत्रकारिता की भाषा को विकृत करने का बीड़ा उठा लिया है। यदि हिन्दी में उपयुक्त शब्द न हो तो हमारी लोक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच शब्दों का आदान-प्रदान होना चाहिए। पत्रकारों को अपना शब्द ज्ञान बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए। हमें राष्ट्रीय भाव-विचारों से नई पीढ़ी तैयार करनी होगी, जो अनेकता में भी एकता की बात कर सके। इसी पीढ़ी से अच्छे पत्रकार भी निकलेंगे। श्री श्रीधर ने नये पत्रकारों से अपेक्षा की कि वे खूब मनन करें। उन्हें अध्ययन में खास रुचि लेना होगी। तब ही उनके लेखन में प्रखरता और

निखार आएगा। वे जो भी लिखेंगे, उससे समाज और देश का भला हो, यह सोच कर वे समाचार, लेख आदि लिखें। इसी में उनके पत्रकार होने की सार्थकता है।

श्री कैलाशचन्द्र पन्त

'अक्षरा' के प्रधान संपादक श्री कैलाशचन्द्र पंत ने विश्लेषणात्मक वक्तव्य में पत्रकारिता का समग्र परिदृश्य प्रस्तुत किया। आपने कहा - सामाजिकता की बुनियाद जब टूटती है, तो समस्याएँ पैदा होती ही हैं। आज बड़े अखबारों में विज्ञापनों की प्रमुखता रहती है। दरअसल हम विज्ञापन ही खरीद रहे हैं। जिस प्रकार की सूचनाओं की अपेक्षा पाठक करते हैं वे आज के प्रमुख अखबारों से नहीं मिल रही है। उनमें सनसनी, बलात्कार, भ्रष्टाचार आदि की नकारात्मक खबरों की बहुलता रहती है। एक विचार शून्यता पसरती चली जा रही है। क्या सही है और क्या गलत है? कौन-सा आचरण मंगलकारी है और कौन-सा अमंगलकारी? इसकी परख करने वाला विवेक ही जैसे समाप्त हो गया है। आज हम बस भीड़ बनकर रह गए हैं। समाज मशीन बन गया है।

श्री पन्त ने कहा - आज अखबारों में हर रोज जो छप रहा है, उससे तो लगता है - जैसे देश में भ्रष्टाचार और अनाचार के अलावा और कुछ नहीं हो रहा है। एक समय पूरा अखबार पढ़ने में कम से कम घंटा-डेढ़ घंटे का समय लग जाता था। अब तो आम आदमी 10 मिनट में पढ़कर अखबार को एक तरफ पटक देता है। यह बहुत चिंताजनक स्थिति है। पहले अखबार में एक ऐसा संपादकीय पृष्ठ हुआ करता था, जिस पर संपादकीय के अलावा सम-सामयिक विषयों पर बाहर के लेखकों और चिंतकों के लेख छपते थे। साथ ही 'संपादक के नाम पत्र' कालम में पाठकों की बात भी छपा करती थी। आज इस पृष्ठ की पहले जैसी स्थिति नहीं रह गई है। पाठकों के पत्रों को महत्व नहीं दिया जा रहा है। यह माना हुआ सिद्धांत है कि जब व्यक्ति अकेला किसी बड़े विषय पर विचार रखता है, तो वह प्रायः सफल नहीं होता। लेकिन जब विचार को समूह रखता है, तो वह असर पैदा करता है। इस सामूहिकता को वापस लाने की जरूरत है। हमने भारत को भारत की तरह देखना ही बंद कर दिया है। गलत को छोड़ना होगा और समाज से जुड़ना होगा।

श्री मुकेश वर्मा

श्री मुकेश ने कहा - जमाना बदल गया है। आजादी के पहले के दिनों और बाद के दिनों में बहुत बदलाव आया है। भारत की पत्रकारिता भी समय के साथ बदली है। शुरू में देश में कम पूँजी वाले विश्वसनीय अखबार चले। इन अखबारों, इनके संपादकों और पत्रकारों के नाम आज भी बड़ी श्रद्धा के साथ लिए जाते हैं। इस बीच अखबारों की दुनिया में बड़े-बड़े पूँजीपति घरानों का प्रवेश हुआ। उनका वर्चस्व बढ़ता गया। केन्द्र और राज्य सरकारों से उनको विज्ञापनों और सुविधाओं की शक्ल में भरपूर पोषण मिला। इन घरानों ने संपादक नाम की संस्था को बेमानी कर दिया। चिकनी-चुपड़ी पत्रिकाएँ और मजबूत अखबारों की बाढ़ सी आ गई और कम पूँजी वाले अखबार दम तोड़ते चले गए। मीडिया में कारपोरेट घरानों की घुसपैठ हो गई।

श्री युगेश शर्मा

श्री युगेश शर्मा ने पाँच दशक के पत्रकारिता के अनुभवों का उल्लेख करते हुए उन बदलावों को रेखांकित किया, जो बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और 21वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में हुए हैं। जिनसे भारत की पत्रकारिता ऊपर से नीचे तक प्रभावित हुई है। आपने कहा कि नब्बे के दशक तक पत्रकारिता प्रायः सही दिशा की ओर चल रही थी। मूल्यों को भी महत्व दिया जा रहा था। जनता, समाज और राष्ट्र की पर्याप्त चिंता की जा रही

थी। उन्होंने पत्रकारिता के उस दौर में भागीदारी की है, जब समाचारों से बची जगह में विज्ञापन जाते थे। अब तो हालात ये हैं कि जो जगह विज्ञापनों से बच रहती है, उसी में समाचारों को खपा दिया जाता है। अब तो संपादक से अधिक महत्व मैनेजर को दिया जा रहा है। आपने कहा कि अखबारों में नकारात्मक सामग्री का प्राधान्य हो जाने से सकारात्मकता दब गई है।

श्री रघु ठाकुर

श्री रघु ठाकुर ने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में कहा - एक मिशन के रूप में पत्रकारिता आजादी के आंदोलन का महत्वपूर्ण हिस्सा रही है। तब बड़ी कीमत चुकाने के लिए तैयार लोग ही पत्रकारिता का पेशा चुना करते थे। पत्रकारों की संपत्ति तब जब्त कर ली जाती थी, जेल में डाल दिया जाता था। बड़ा कठिन दौर था वह। तब न तो आज जैसे आकर्षक वेतन हुआ करते थे और न सुविधाएँ। संपादकीय लिखना बड़ा चुनौती का काम हुआ करता था। पत्रकारों को समाचार संचय के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी। तब समाचार के लिए सूचना प्राप्त करने के इतने माध्यम एवं सूत्र नहीं थे। अब तो पत्रकारिता प्रायः अविश्वसनीय हो गई है। नये दौर में तो पत्रकारिता सुपारी लेकर हमला करती है। पत्रकारों को समाज और राष्ट्र की चिंताओं के साथ स्वयं को जोड़ना चाहिए। यह खेद की बात है कि अब संपादक अखबार के मालिक के पी.आर.ओ. बन गए हैं।

पैड न्यूज की चर्चा करते हुए रघु जी ने कहा कि अखबार निकालना अब अन्य धंधों की तरह धंधा बन गया है। अखबारों के मालिक लोगों से वसूली कर अखबार की फ्रेंचाइजी देते हैं। जिसको फ्रेंचाइजी मिलती है - वह अपने क्षेत्र में डरा-धमकाकर वसूली करता है।

आपने कहा कि पत्रकारिता से उम्मीद करना जरूरी भी है। जब अखबार ज्ञापन अथवा प्रेस विज्ञप्ति की शक्ल में सरकार का झूठ छापते हैं, तो पत्रकारिता धर्म को निभाते हुए उनको सच भी छापना चाहिए, क्योंकि पाठकों को सच परोसना अखबार का नैतिक दायित्व है। पत्रकारिता और पत्रकारों को ज्यादा खतरा व्यवस्था के भीतर से है। यदि आत्मा ही बिक गई तो बाकी क्या बचेगा? आज स्थितियाँ अनुकूल न होते हुए भी पत्रकारिता को चुनने वालों को मन में यह संकल्प करना होगा कि वे नौकरी नहीं कर रहे, अपितु पत्रकारिता के जरिए जीवन मूल्यों के लिए जी रहे हैं, अपने पत्रकार-धर्म को निभा रहे हैं। सोशल मीडिया का जिक्र करते हुए श्री ठाकुर ने कहा - काम में तेजी आई है। लेकिन इसमें गिरावट के खतरे भी हैं। इसके अलावा विश्वसनीयता भी खतरे में है। प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के मुकाबले संख्यात्मक आधार पर सोशल मीडिया आगे जा रहा है। इस स्थिति को समझना होगा। आज विडम्बना यह है कि जो लोग सोशल मीडिया पर सबकी खबर ले रहे हैं; उनको पड़ोसी की खबर नहीं है। दूरियाँ घटी हैं, तो दूसरी तरफ संबंधों की दूरियाँ बढ़ी भी हैं। इस सच की तरफ से आँखें नहीं बंद की जानी चाहिए।

आपने कहा - संवेदनशीलता लगातार घट रही है। पीड़ा के प्रति मानवता नहीं बची है। हम जब हिन्दी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं की बात करते हैं तो यह सच सामने आता है कि अँगरेजी की जड़ें भारत में जमाने के लिए हिन्दी सहित भारतीय भाषाओं को मारा जा रहा है। उसके लिए विदेशी पूँजी भारत पहुँची है। गांधीजी और लोहिया जी की इच्छा की अनदेखी करके अँगरेजी को इस तरह देश पर लादा जा रहा है। अँगरेजी की यह दासता भविष्य में क्या गुल खिलाएगी, कहा नहीं जा सकता। लोग आजकल अपने बच्चों को ऐसे स्कूलों में पढ़ा रहे हैं, जहाँ हिन्दी बोलना भी गुनाह माना जाता है। हमें इस तरह अपनी मातृभाषा का अपनी ही धरती पर अपमान सहन करना पड़ रहा है। ये अपमान पैसों वालों के स्कूलों में हो रहा है और सरकार चुपचाप देख रही है। ❑❑

बदलते परिवेश में पत्रकारिता

जिला स्तरीय मीडिया संवाद कार्यक्रम का आयोजन नरसिंहपुर में 16 मार्च को किया गया। यह कार्यक्रम मुख्य रूप से दिन-प्रतिदिन सामने आ रही नवीन तकनीकों और बदलते परिवेश में पत्रकारिता की चुनौतियों पर केन्द्रित रहा। कार्यक्रम में पत्रकारिता विधा की कौशल संबंधी बारीकियों, नवीन तकनीकों और संविधान में उल्लेखित प्रेस से जुड़े कानूनों से अवगत कराया गया, ताकि मीडिया प्रतिनिधि अपना कार्य और भी प्रभावी ढंग से कर सकें। यहाँ समाचार की अवधारणा, समाचार लेखन, समाचार के प्रकार, समाचार की संरचना, समाचार की विभिन्न शैलियों, फीचर एवं अन्य प्रमुख विधाओं के प्रभावी लेखन की विशेषताओं, सम्पादन की अवधारणा एवं बदलती प्रक्रिया, नई तकनीक के प्रयोग, विकास की अवधारणा, विकास के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, संविधान में उल्लेखित विभिन्न प्रेस कानून एवं मीडिया संबंधी दिशा-निर्देशों के बारे में अवगत कराया गया।

कलेक्टर डा. आर.आर. भोंसले ने कहा कि पहले की तुलना में वर्तमान में मीडिया के परिदृश्य में तेजी से बदलाव आ रहा है। नवीन तकनीकों के कारण मीडिया के स्वरूप में नित नये बदलाव हो रहे हैं। इस दौर में अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों और दायित्वों के प्रति अधिक सजगता की जरूरत है। उन्होंने तथ्यात्मक खबरें देने पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि सोशल मीडिया के माध्यम से सूचनाओं का आदान-प्रदान बहुत तेजी से होता है। इसके जहाँ अनेक लाभ हैं, वहाँ नुकसान भी हैं। तथ्यात्मक पुष्टि के बाद ही सूचनाओं का आदान-प्रदान करना चाहिए। गंभीरता से सोच-विचार करने के बाद ही सूचना का सम्प्रेषण करना चाहिए। पत्रकारिता में शुचिता को बनाए रखने की आज महती आवश्यकता है। उन्होंने प्रशासन एवं मीडिया के बेहतर समन्वय पर जोर दिया।

रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय के पत्रकारिता विभाग के अध्यक्ष डा. धीरेन्द्र पाठक ने समाचार लेखन एवं सम्पादन के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होंने संविधान में उल्लेखित अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और मीडिया से जुड़े कानूनी प्रावधानों के बारे में जानकारी दी। उन्होंने कहा कि समाचारों में तथ्यात्मक सत्यता, संक्षिप्तता और स्पष्टता होनी चाहिए। समाचार का लेखन पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर नहीं करना चाहिए। समाचार की विश्वसनीयता अत्यंत आवश्यक है। प्रतिस्पर्धा के युग में बाजार में बने रहना और पत्रकारिता की शुचिता को बरकरार रखने की चुनौतियाँ सामने हैं।

वरिष्ठ पत्रकार ब्रजेश राजपूत ने कहा कि नरसिंहपुर जिले में पत्रकारिता की समृद्ध परम्परा रही है। उन्होंने क्रांतिवीर ठाकुर निरंजन सिंह एवं शंभुदयाल राय 'हंस' के जिले की पत्रकारिता में योगदान का उल्लेख किया। उन्होंने तकनीक में आ रहे निरंतर बदलाव के अनुरूप पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य करने पर जोर दिया। पत्रकारिता में विश्वसनीयता बनाए रखना आज सबसे बड़ी चुनौती है। उन्होंने खबरों के माध्यम से जागरूकता बढ़ाने पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि पत्रकारों को छोटी-छोटी महत्वपूर्ण खबरों पर पैनी नजर रखनी चाहिए। सामाजिक बदलावों के अनुरूप समाचारों के प्रेषण पर ध्यान देना चाहिए। वर्तमान में मोबाइल और कैमरा के उपयोग से पत्रकारिता में क्रांतिकारी बदलाव आया है। इनका सही तरीके से इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

वरिष्ठ पत्रकार मनोज शर्मा ने कहा कि वर्तमान में पत्रकारिता में विश्वसनीयता की चुनौती सबसे बड़ी है। पत्रकारिता में

विश्वसनीयता बनाए रखना नितांत आवश्यक है, इससे समझौता नहीं किया जाना चाहिए। वर्तमान में लिखने की आदत घट रही है, इसे बरकरार रखना जरूरी है। उन्होंने कहा कि पत्रकार अपना काम पूरी ईमानदारी से करें। किसी भी महत्वपूर्ण समाचार अथवा स्टोरी का फालोअप अच्छे से करें। समाचार लेखन में स्थानीय महत्वपूर्ण तथ्यों पर विशेष फोकस करें। इसके लिए तथ्यों का भलीभाँति अन्वेषण कर समाचार लेखन करें। एमजीएम करेली के एस. सिलाकारी ने कहा कि पत्रकारिता का काम अत्यंत जिम्मेदारी का काम है। समाज की दशा बदलने और दिशा देने में पत्रकारिता का योगदान महत्वपूर्ण है। उन्होंने कहा कि समाचार लेखन के पहले संबंधित तथ्यों और कानूनी प्रावधानों की अद्यतन जानकारी रखना चाहिए।

मीडिया संवाद कार्यक्रम में मीडिया प्रतिनिधियों ने भी विचार प्रकट किए। मीडिया संवाद कार्यक्रम के उद्देश्यों पर सहायक संचालक जनसंपर्क यशवंत सिंह बरारे ने प्रकाश डाला। ❑

सप्रे संग्रहालय में 'कौन कहता है ईश्वर नहीं है' किताब का विमोचन

इस धरा पर किसी न किसी रूप में ईश्वर का अस्तित्व है। हम इसे किसी भी रूप में स्वीकार करें पर कभी न कभी स्वीकार करना होता है। यह कहना है पूर्व कुलपति के.एस. ढिल्लन का। वे 25 मार्च को सप्रे संग्रहालय में पूर्व कुलपति सी.एस. चड्ढा की किताब 'कौन कहता है ईश्वर नहीं है' का विमोचन करते हुए बोल रहे थे।

श्री ढिल्लन ने कहा कि कभी मैं भी ईश्वर में विश्वास नहीं करता था। लेकिन जब श्री चड्ढा की किताब और उनके अनुभवों को सुना तो मुझे भी कुछ अहसास हुआ। इसके बाद जब मैंने आगे अपने आपको टटोला तो पाया कहीं न कहीं ईश्वर है। उन्होंने अपने निजी जीवन से जुड़े अनुभव भी सुनाए। किताब के लेखक श्री चड्ढा ने कहा कि मैं पहले कभी ईश्वर में विश्वास नहीं करता था। जीवन में कई ऐसे चमत्कार होते हैं जो ईश्वर की सत्ता का विश्वास दिलाते हैं। मैंने जीवन में कुछ इस तरह की घटनाएँ देखीं जिससे मेरा ईश्वर में विश्वास पक्का हो गया। इस किताब में इस तरह की घटनाओं का ही जिक्र किया है। यह किताब एक तरह से नास्तिक के आस्तिक होने की यात्रा का ब्यौरा है। इसके पूर्व सप्रे संग्रहालय के संस्थापक-संयोजक पद्मश्री विभूषित विजयदत्त श्रीधर ने बताया कि सप्रे संग्रहालय अपने आप में बौद्धिक संपदा का एक खजाना है। यहाँ 1,60,000 किताबें, 2000 पाण्डुलिपियाँ तथा करीब 26000 शीर्षक पत्र पत्रिकाएँ हैं। यहाँ हर विषय की दुर्लभ संदर्भ सामग्री मिल सकती है। कार्यक्रम का संचालन प्रो. रत्नेश ने किया। कार्यक्रम में पूर्व आई.ए.एस. सर्वश्री ए.के. पण्ड्या, मनोहर केशव, ए.के. अग्रवाल, टी.एन. श्रीवास्तव, डी.एस. माथुर, पुखराज मारू, रमाकांत दुबे, पूर्व आई.पी.एस. सर्वश्री अरुण गुर्टू, सुभाष त्रिपाठी, उपेन्द्र जोशी, शिक्षाविद् श्यामसुंदर बिल्लौरे, डा. नीरजा शर्मा, डा. शिवकुमार अवस्थी, कृष्णगोपाल व्यास, देवी सरन, सुरेन्द्र द्विवेदी, कमलेश पारे, डा. मंगला अनुजा, पत्रकार दीपक पगारे, राजेश गाबा सहित अनेक प्रबुद्धजन मौजूद थे। ❑❑

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक विजयदत्त श्रीधर द्वारा दृष्टि आफसेट, भोपाल से मुद्रित तथा माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल (म.प्र.) 462 003 से प्रकाशित संपादक – विजयदत्त श्रीधर

सप्रे संग्रहालय का

लोक विज्ञान अनुष्ठान

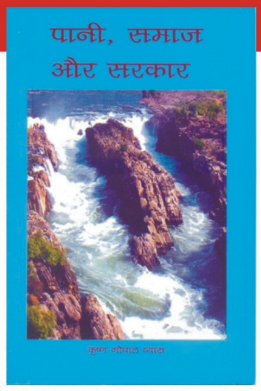

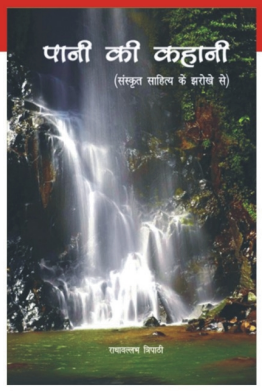

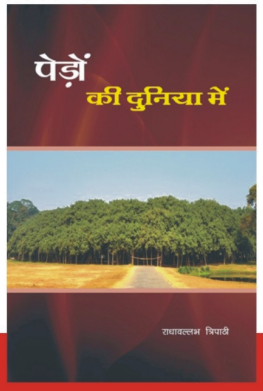

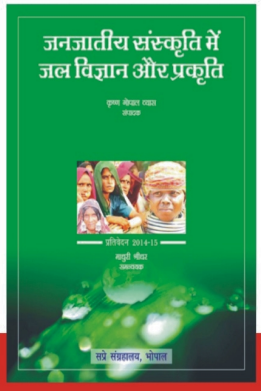

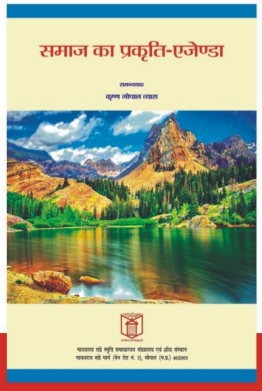

सप्रे संग्रहालय

सा विद्या या विमुक्तये

प्रशासनिक अधिकारी

माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान

माधवराव सप्रे मार्ग (मुख्य मार्ग क्र. 3), भोपाल (म.प्र.) - 462 003

दूरभाष - (0755) 2763406, 4272590

Email - sapresangrahalaya@yahoo.com, editor.anchalikpatrakar@gmail.com

Website - www.sapresangrahalaya.com

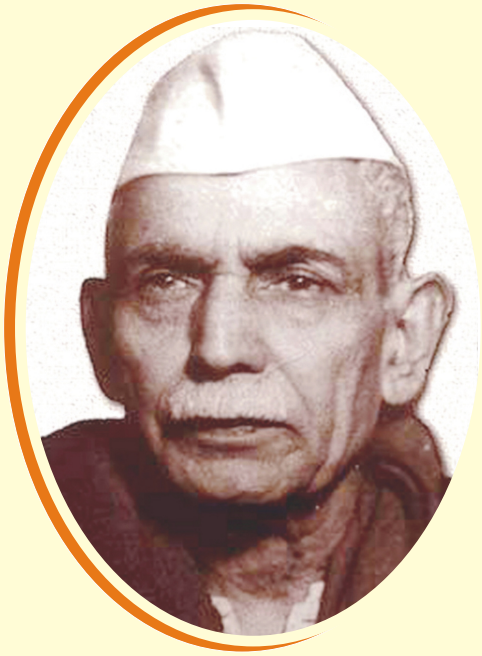

'एक भारतीय आत्मा' दादा माखनलाल चतुर्वेदी

(जन्म : 4 अप्रैल 1889 – निधन : 30 जनवरी 1968)

लो पालागन भी, असीस भी

माखन-सा मन मृदुल तुम्हारा
मिसरी-से हैं वचन रसाल।

स्निग्ध मधुर निज दान कर्म कर
जियो सदा माई के लाल।

लो पालागन भी, असीस भी
लाभ तुम्हीं को है मोटा।

सब विध बड़ा बनाकर विधि ने
बना दिया वय में छोटा।

('एक भारतीय आत्मा' दादा माखनलाल चतुर्वेदी के जन्मदिन पर उनके काव्य गुरु राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का स्नेहाशीष)